भारत गौरव

विवेकानन्द



भारत-गौरव—

विवेकानन्द

(प्रेरक जीवनी उपन्यास)

स्वामी विवेकानन्द ने अपने-ओजस्वी विचारों से न केवल भारत को बल्कि योरुप और अमेरिका तक को आलोकित कर दिया था ! झकझोर डाला था !! उसी महापुरुष की प्रेरक जीवन-गाथा को औपन्यासिक - परिवेश में मनमोहक शैली में प्रस्तुत किया गया है !

भाषा भवन, मथुरा.

प्रकाशक :
भाषा भवन
हालन गंज, मथुरा (उ० प्र०) 281001

●

लेखक :
डा० राधेश्याम अग्रवाल

●

नवीन संस्करण : जनवरी 1990

●

●

मूल्य : पाँच रुपये

●

मुद्रक :
महिला मुद्रण संस्थान, मथुरा.

●

250

एक

कलकत्ता में सिमला मुहल्ले की बात ही निराली है। कभी इस मुहल्ले में एक दो-मंजिला बँगला था। बँगले में ढेर सारे प्राणी रहते थे। घर सदा ठसाठस भरा रहता था, कभी मुफ्त-खोरों से तो कभी विद्वानों से। नौकर-चाकर दत्त परिवार में आने-जाने वालों की जी भरकर सेवा करते थे। इस घर में जन्म से ही नटखट और चंचल एक लड़का भी था, नरेन। उसके पिता विश्वनाथ का मन गुणों की खान था और हृदय में दया का सागर लहराता रहता था। मगर वे नरेन की चंचलता देखकर कभी-कभी खट्टे पड़ जाते थे कहा—'नरेन! तूने करुणा को पत्थर और प्रतिभा को कंकड़ बना दिया है। कभी तो सीधे बैठा कर।'

तब नरेन उत्तर देता—'पिता जी! क्या करूँ' मेरा स्व-भाव ही ऐसा बन गया है।'

विश्वनाथ नरेन को कड़ी नजर देखकर सामने का रास्ता पकड़ लेते। वह बाइबिल या रामायण को उठा लेते और दोनों ग्रन्थों के पन्नें लौटते-पौटते रहते। मगर नरेन का व्यक्तित्व उनकी आँखों के सामने नाच उठता—'आखिर यह नटखट लड़का समझता क्यों नहीं···? कब समझेगा? समझेगा भी या !.

58

और नरेन खेल की दुनिया में खो जाता । उसे गाड़ी भर खेल और मुट्ठी भर हँसने-हँसाने में विशेष आनन्द आता था ।

एक बार वह अपनी बहिनों के साथ खेल रहा था, आँख-मिचौली ! घर की गाय को भी उसने शामिल कर लिया था ।

बहिनें चोर बन चुकी थीं । इस बार पारी थी नरेन की बहिनें छिप गईं तो नरेन उन्हें खोजने निकला । उसने आस-पास का सारा क्षेत्र ढूंढ़ लिया, दोनों का कहीं पता नहीं था । वह दौड़ पड़ा पशु-पक्षियों के घर की तरफ । पहले उसने बन्दर की तरफ देखा । फिर उसने बकरा, मोर, कबूतर और चूहों का घूरा । जब किसी पशु-पक्षी ने उसकी सहायता नहीं की तो वह उन सबको मुँह चिढ़ाकर बोला—'तुम्हें मैंने व्यर्थ ही पाला है तुमसे अच्छा तो गधा होता है अगर मैं उससे पूछता कि मेरी बहिनें कहाँ छिपी हैं तो वह अवश्य ढेंचू-ढेंचू करके बता देता ।'

वहाँ से चला तो वह एक खुली नाली के पास आया । उसकी नजर नाली पर पड़ी । उसके पीछे छिपीं दोनों बहिनें ।

नरेन ने झट दोनों की गरदनें दबोच लीं । फिर जब देर तक उसी अवस्था में गरदनें दबाये रखी तो दोनों लड़कियाँ चिल्ला उठीं—माता ! बचाओ हमें ! नरेन हमारा सिर तोड़े डाल रहा है ।'

नरेन ने जल्दी से गरदनें छोड़ दी । इतने में माँ आ खड़ी हुई । बोलीं—'क्या है रे नरेन !

नरेन झट खुली नाली में घुस गया और मुँह बना-बना कर अपनी बहिनों को चिढ़ाने लगा ।

दोनों लड़कियाँ गहरी-गहरी सांसें लेकर कहने लगीं—'हम चोर-सिपाही खेल रहे थे कि ··· कि नरेन दादा ने हमारी गरदनें ·· हाँ, मरोड़ दीं··· ···!'

नरेन समझ गया कि माँ उसे जरूर पीटेगी। उसने नाली से गरदन निकाली और चुपके से माँ के पीछे आकर खड़ा हो गया।

माँ ने पूछा—'गया कहाँ वह भूत ?'

लड़कियाँ बोलीं—'माता ! भूत नहीं नरेन था।'

माँ ने आँखें दिखाते हुए कहा—'अरे वह भूत ही है।'

मैंने शिवजी से एक पुत्र के लिए प्रार्थना की थी और उन्होंने अपना एक भूत भेज दिया।'

चोर-सिपाही का खेल बन्द हो गया। नरेन माँ की आँख बचा कर घुड़साल की ओर निकल गया। सईस ने उसे देखा तो बोला—'छोटे सरकार आप !'

नरेन ने कहा—'शंतू ! आज मेरे मन में एक बात आई है !'

शंतू अपने मालिक के शैतान बेटे का मुँह ताकने लगा। वह नरेन के स्वभाव से भली-भाँति परिचित था।

नरेन ने कहा—'आज तू घोड़ा-गाड़ी पर बैठेगा और मैं कोचवान बनूँगा।'

शंतू की आँखें आश्चर्य से फट गईं। उसकी वाणी में घबराहट की बिजली आ घुली। कहने लगा—'सरकार ! अगर दत्त साहब ने सुन लिया तो मेरे बच्चे भूखे मर जायेंगे।'

'शंतू ! कोई किसी को भूखा नहीं मारता ला, अपना साफा और चाबुक मुझे दे।'

'शंतू नौकर था। उसने हथियार डाल दिए।

नरेन ने सिर में फेंटा बाँधा, हाथ में चाबुक लिया और कोचवान बनकर गाड़ी में सबसे आगे जा बैठा। सचमुच नरेन एक भव्य सईस लग रहा था।

चाबुक घोड़े की पीठ पर पड़ते-पड़ते रह गई। 'अरे शंतू ! तू अभी तक गाड़ी में बैठा क्यों नहीं ? आज तू दत्त साहब समझ अपने को।'

यह दूसरा बम फटा। उस जमाने में भला नौकर मालिक की सीट पर कैसे बैठता ? एटीकेट का जमाना था वह- आज-कल की तरह सिण्डीकेट का नहीं।

हाथ हिलाकर शंतू ने कान पकड़ लिए—'सरकार ! मुझे आपका यह खेल बिल्कुल पसन्द नहीं है।'

तभी पीछे से शंतू के कानों में एक परिचित आवाज आ टकराई-"बैठ जा शंतू ! नरेन की इच्छा भगवान की इच्छा है।"

शंतू ने पलट कर देखा नरेन के पिता विश्वनाथदत्त खड़े थे। उनके ओठों पर मीठी मुस्कान और आँखों में दया भरी आज्ञा थी।

शंतू कोच पर बैठ गया।

नरेन ने चाबुक हवा में घुमाई और घोड़े की पीठ पर दे मारी।

दो घण्टे बाद जब वह घूम-घाम कर लौटा तो पिता ने उसकी आँखों अद्भुत आलोक-बिन्दु देखे।

बोले--'बेटा ! खेल बालक का जीवन होता है। पर तू तो ऐसा खेल क्यों नहीं खेलता जिससे दूसरों को भी सुख मिले।'

'ऐसा खेल ! नरेन ने पिता को आश्चर्य से देखा। उसके छोटे मन में पिता की बड़ी बात नहीं आई।

कपड़े उतार कर जब वह अपने कमरे में घुसा तो उसके सामने पिता के शब्द जैसे साक्षात आकर खड़े हो गए। वह उन

पर घण्टों मनन करता रहा। सहसा उसके कानों में किसी ने चुपके से आकर कहा—'नरेन ! तू स्वार्थी आदमियों की तरह केवल अपनी ही मुक्ति की कल्पना कर रहा है ! दूसरों के दुःख में अपना दुःख और दूसरों के सुख में अपना सुख समझ !'

नरेन चौंककर उठ बैठा।

तभी माँ आकर खड़ी हो गई। बोली—'नरेन ! आज तू छः वर्ष का हो गया। कल से तुझे प्राथमिक शाला में जाना होगा। पिताजी आचार्य जी से मिल चुके हैं।

नरेन का परिन्दों वाला उन्मुक्त मन भला बँधने के लिए कब तैयार होता ? उसमें बड़े बे-मन से कहा—'जाऊँगा माता, लेकिन ...'

'लेकिन क्या ? ऐं !'

'पिता की आज्ञा मानने को तैयार हूँ। मैं।'

दूसरे दिन से नरेन प्राथमिक शाला में जाने लगा। पर कुछ ही दिनों में उसने विचित्र संग-साथियों की एक टोली बना ली। टोली के 'दादा' कहलाने लगे नरेन ! और नरेन का काम हो गया या स्कूल के बच्चों को तंगड़ी देना, थैला छीन कर दूर फेंक देना आदि। आचार्यगण तंग आ गए तो घर पर शिकायतें लिख-लिख कर भेजने लगे। माँ-बाप को जो पहले से डर था, वह पहाड़ बनकर उनके रास्ते में आ खड़ा हुआ। अखिर शेरने अपनी माँद पहाड़ में खोद ही ली !

एक दिन समझाया गया नरेन को—'बेटे ! यह सब अच्छा नहीं है। इससे परिवार की शालीनता पर आँच आती है। तुझे सब बुरा लड़का कहने लगे हैं।'

नरेन का जबाब था—'माँ ! इस संसार में मुझे तो सब बुरे ही दिखाई देते हैं। जब कोई अच्छा है ही नहीं, तो मैं अच्छा कैसे बन सकता हूँ।'

माँ समझ गई कि बालक पर सोहबत का असर पड़ रहा है। सचमुच उसे चारों ओर बुराई ही दिखाई दे रही है।

इस प्रसंग को मां ने नरेन के पिता के सामने रखा। विश्वनाथ दत्त ने अपने मन को गहर में टटोल, निर्णय की एक बूँद उन्हें मिल गई।

अगले दिन से नरेन को पाठशाला जाने से रोक दिया गया। उसके लिए घर ही एक शिक्षक नियुक्त कर दिया गया।

शिक्षक योग्य था। उसने शीघ्र ही बालन का मन जीत लिया। नरेन देखते-देखते अपने अध्ययन में उल्लेखनीय बुद्धि का परिचय देने लगा। उसने लिखना-पढ़ना सीख लिया, जब कि दूसरा लड़के वर्णमाला से ही कुश्ती लड़ रहे थे।

माँ-बाप की आशा की कुआँ गहरा होता गया। नरेन ने विलक्षण बुद्धि का प्रकाश फैलाना शुरू कर दिया। शिक्षक इधर पाठ सुनाता, उधर नरन को याद हो जाता। सात वर्ष की आयु पार करते-करते नरेन ने 'मुक्ति बोध' नामक संस्कृत व्याकरण को कण्ठस्थ कर लिया। साथ ही रामायण और महाभारत के लम्बे-लम्बे प्रसंगों को भी।

माँ-बाप इस विलक्षण बुद्धि वाले बालक को देखते ही रह जाते। उन्हें विश्वास ही नहीं होता कि यह वही लड़का है, जो बात कहते ही दस गज ऊँची छलांग भरता था। आखिर इस शिक्षक ने उल्टी माला को सीधा कैसे कर दिया?

दिन गति के पंखों पर बैठकर उड़ने लगे और नरेन ने सात सावन पूरे देख लिए। अब उनका नाम लिखाया गया 'मेट्रोपोलिटन इन्स्टीट्यूट' में। इस शिक्षालय की स्थापना पंडित ईश्वरचन्द्र विद्यासागर ने की थी।

पहले ही दिन शिक्षक ने नरेन से पूछा – 'बेटे ! इस संसार में हजारों-लाखों आदमी हैं। लेकिन क्या वे वास्तव में 'मनुष्य' भी हैं ?'

बड़ा अनोखा सवाल था। बालक नरेन ने शिक्षक को गौर से देखा। बोला – 'नहीं हैं शिक्षक जी !'

'क्यों ?'

'मेरा मन तो कहता है जिसका हृदय गरीबों के लिए रोता है, वही मनुष्य है।'

'अन्यथा ?'

'वह दुरात्मा है।'

शिक्षक ने नरेन के गाल प्यार से थपथपाये। बोले - 'तुम संसार में नाम कमाओगे।'

नरेन पढ़ने बैठ गया। मगर उसके शरीर की मशीन कभी रुकने वाली तो थी ही नहीं। वह क्या जाने शान्त कैसे बैठा जाता है ! उसने ढेर लगाना शुरू कर दिया शैतानियों का। अभी वह अपने छठे साथी के कान में कागज की फुररी गुल गुलाकर हटा ही था कि शिक्षक ने देख लिया।

'यहाँ आओ नरन !'

आज्ञा शिरोधार्य और शेर का शावक अपने गुरु के सामने चल पड़ा किन्तु धीरे-धीरे !

आचार्य बड़े ध्यानपूर्वक कभी उसकी चाल की ओर तो कभी उसके भावपूर्ण चेहरे की ओर देख रहे थे। जब वह पास आ गया तो बोले –

'तुम अभी अभी क्या कर रहे थे ?'

'जी रवि के कान में……।'

क्यों ?'

'आप पढ़ा रहे थे और वह सो रहा था। मैंने सोचा कि ।'

'और तुम जाग रहे थे ?' शिक्षक ने तीव्र स्वर में कहा

'जी !'

'अच्छा, बताओ मैंने क्या-क्या पढ़ाया ?

नरेन ने अध्यापक के लेक्चर का एक-एक अक्षर ज्यों का त्यों सुना दिया।

अध्यापक जैसे सुन्न हो गया। उसे लगा कि यह बालक ईश्वर का एक अंश है, एक ऐसा शुभ्र तेज-जो भव्य है और दिव्य भी !

वह दो क्षण के लिए बालक को नयी आज्ञा देना भूल गया।

'मैं जाऊँ सर .... ?'

नरेन की स्वर-लहरी से अध्यापक जैसे चौंक उठा। हाँ जाओ।' अध्यापक से यह कहते बना।

नरेन अपने संगी-साथियों का प्रिय मित्र बन गया मगर 'नेतागीरी' नहीं छोड़ी थी उसने। स्कूल की फील्ड में उसका प्रिय खेल था 'राजा और दरबार'। एक कमरा की सबसे ऊपर की पौडी उसका सिंहासन थी और नीचे की सीढ़ियाँ दरबारियों के आसन। राजा सबसे ऊपर बैठता। किसी की उसके बराबर वाली सीढ़ी पर बैठने का अधिकार नहीं था। सिंहासन पर बैठ कर नरन अपने प्रधानमन्त्री, सेनानायक सूबेदार और अन्य पदाधिकारियों की नियुक्ति करता। फिर उन्हें आज्ञा देता कि वे अपने-अपने पद के अनुसार सीढ़ी चुन लें। वह एक दरबार लगाता और शाही गरिमा के साथ न्याय करता। यदि आज्ञा का तनिक भी उल्लंघन होता तो उसका निराकरण कर दिया जाता।

इस खेल में साथियों को विशेष आनन्द आता। प्रायः सभी को 'नई दुनियाँ' में विचरने का अवसर मिलता।

नरेन जब अपनी टोली के साथ खेलता तो मानो प्राण आ जाते। विद्यालय में जब कक्षायें मध्याह्न-भोजन के लिए बन्द होतीं,तो वह सबसे पहले भोजन समाप्त कर खेल के मैदान में भाग जाता। नये खेल सदैव उसे मुग्ध कर लेते। कभी-कभी तो वह नये खेलों का आविष्कार भी कर बैठता। प्रायः लड़कों में विवाद की नौबत आ जाती। उस समय सभी समझौते के लिए नरेन के पास पहुँचते। नरेन उनका समाधान चटपट कर देता।

एक बार कक्षा में नरेन अपने मित्रों में गपशप कर रहा था। तभी अचानक भट्टाचार्य आ गये। यह जरा कठोर स्वभाव के अध्यापक थे। उन्होंने नरेन के ऊपर नजर उड़ेली और पाठ पढ़ाने लगे।

आधा अध्याय खत्म करने के बाद भट्टाचार्य बोले—'दोहराओ इसे !'

अन्य लड़कों की समझ में खाक नहीं आया, अतः वे सर लटका कर बैठ गये। पर नरेन ने पाठ पर मनन किया। ठीक दस मिनट बाद उसने सर ऊपर उठाया। भट्टाचार्य ने प्रश्न पूछना शुरू किया।

नरेन ने शिक्षक को जो उत्तर दिए, वे शिक्षक की बुद्धि से भी ऊँचे थे। परन्तु भट्टाचार्य तो नरेन की बातों से चिढ़े हुए थे। वे किसी न किसी बहाने से नरेन को ही दण्डित करना चाहते थे। बोले -'पाठ के बीच-बीच में बातें कौन-कौन कर रहा था ?'

सब लड़कों ने नरेन की ओर इशारा कर दिया। किन्तु आचार्य जी तो नरेन से यही उत्तर सुन चुके थे। मुँह लटका

कर रह गए। सचमुच इस विलक्षण बुद्धि वाले बालक से पेश आना शिक्षकों के लिए कठिन था।

एक दिन नरेन विद्यालय से पढ़कर घर आ रहा था। रास्ते में उसके मित्र राय का घर पड़ा। घर देखकर उसे वह पेड़ याद आ गया जिस पर नरेन जब तब चढ़ जाया करता था। केवल चढ़ता ही नहीं था, वरन् वह उसकी डालों पर पर उलटा भी लटक जाता था। वह कुछ देर तक उसी दशा में झूला भी झूलता रहता, फिर धप से नीचे कूद पड़ता था। उसकी यह हरकतें उस घर के एक बूढ़े बाबा को पसन्द नहीं थीं। बूढ़े की आँखों में क्षीण प्रकाश था, उसने नरेन को कई बार समझाया था कि नरेन पेड़ पर न चढ़ा करे। किन्तु नरेन ने उसकी एक नहीं सुनी थी।

इस बार भी वह बूढ़े की आँख बचाकर पेड़ पर पर चढ़ गया। कुछ खटपट हुई तो बूढ़ा सुगबगा उठा। पेड़ के पास आया तो देखा कि नरेन डालियों को बन्दर की तरह हिला रहा है।

बूढ़ा कहने लगा—'नरेन! मैंने तुझसे कई बार मना किया किन्तु तूने कभी कान नहीं दिए। आज तुझे सच-सच बताये देता हूँ। इस पेड़ पर ब्रह्मराक्षस रहता है। वह चढ़ने वाले की गरदन पकड़ कर मरोड़ देता है।

नरेन नीचे कूद पड़ा। पर ज्योंही बूढ़ा बाबा नजरों से ओझल हुआ कि नरेन ने पुनः पेड़ पर चढ़ना शुरू कर दिया।

यह देखकर बूढ़े बाबा का सिर चकरा गया। वह अपने मन ही मन सोचने लगा—यह लड़का कितना निर्भीक है। डर-भय तो इसे है ही नहीं।

उसका मित्र राय वहीं खड़ा था। उसने भी बूढ़े की बात कान-धरी थी। उसे ब्रह्म राक्षस के होने का पूरा विश्वास था। अत: नरेन को ऊपर चढ़ने से मना किया। मगर नरेन राय की गम्भीर मुद्रा को देखकर हँस पड़ा। फिर बोला—'तू भी कैसा भोंदू है रे! अगर बूढ़े बाबा की बात सच होती, तो भूत ने मेरा गला कब का मरोड़ दिया होता?'

इस उत्तर को सुनकर राय का छोटा-सा मन नरेन की दुर्दमनीय साहसिकता के प्रति श्रद्धा से भर उठा। सच में नरेन ने छोटी-सी आयु में ढेर सारे अन्ध-विश्वासों को चुटकियों में उड़ा दिया था।

पेड़ से उतरने के बाद राय ने नरेन से पूछा—'क्या सचमुच दुनिया में भूत नहीं होते हैं?'

'नहीं।'

'लेकिन फिर सब लोग…।'

'सब लोग स्वयम् एक दिन भूत हो जायेंगे। इसलिये वे वर्तमान में भूतों को याद करते हैं। नहीं समझा? भूत कहते हैं बीते हुए काल को, और बीती हुई बातों को याद करने से मन के मुँह को घी-शक्कर मिलता है, इसलिए सब लोग उसे भूलना ही नहीं चाहते हैं।' राय नरेन की बात सोचता हुआ उसकेसाथ चल दिया। सड़क तक आया, तो उसे कुछ याद आया। कहने लगा—'अच्छा! इसे तो तू मानेगा कि पेड़ की डाल से कभी तेरा पाँव फिसल सकता है। कभी-कभी हमारी सावधानी भी हमें धोखा दे जाती है।

नरेन ने राय की इस बात का आदर किया। उसने प्रतिज्ञा करते हुए कहा—'जो सच है वह झूठ कभी नहीं हो सकता। राय! आज से पेड़ पर चढ़ना बन्द। अब तो तू प्रसन्न है।'

राय की आँखों में सचमुच प्रसन्नता के मोती उग आये थे। उसकी प्रसन्न-मुद्रा उसके मित्र राय को भी बड़ी भली लगी। उसकी बात का सम्मान भी किया था नरेन ने।

दो

"माता ! तुम समझती क्यों नहीं मेरे कारण रवि भैया का हाथ नहीं टूटा है। उन्होंने मुगदर घुमाने की कला सीखने से पहले ही मुगदर उठाकर ... ।'

नरेन की बात पूरी भी नहीं हो पाई थी कि माँ ने अपने प्रिय पुत्र के गाल पर एक चपल लगाते हुए कहा–'अब तू अधिक समझदार हो गया है। तुझे गली-मुहल्ले में फूँक-फूँक कर कदम रखना है। आज से तेरी व्यायामशाला बन्द।'

नरेन नहीं चाहता था कि मित्रों की टोली उससे नाराज हो जाय। उन्हीं के सहयोग से उसने पड़ोस में व्यायाम-शाला खोली थी। इतना ही नहीं उसमें तलवारबाजी, लाठी चलाना, कुश्ती तथा अन्य खेलों का प्रबन्ध भी किया था। कहीं से एक गुरु को फुसला लाया था। उसी के नेतृत्व में मित्र-मण्डली अन्यसब खेलों का ज्ञान प्राप्त करती थी। परन्तु माँ ने व्यबधान उपस्थित कर दिया था, जरा सी बात से।

नरेन ने कुछ सोच कर जबाब दिया – 'अच्छा माता ! मैं तेरी बात मानता हूँ। और तू मेरी बात मान । कल सामूहिक व्यायाम प्रतियोगिता है। दूर-दूर के कलाबाज आ रहे हैं। उस प्रतियोगिता के बाद मैं व्यायाम-शाला में ताला डाल दूँगा।'

माँ मान गई।

नरेन की खुशियों का ठिकाना नहीं रहा। अगले दिन उसने सामूहिक व्यायाम-प्रतियोगिता में पहला पुरस्कार छीन लिया। माँ ने सुना तो खुश हो गई, किन्तु उससे बड़ी खुशी उसे उस समय हुई जब उसने सुना कि नरेन ने व्यायाम-शाला भंग कर दी है।

इसी समय उसके मन में पाक-विद्या सीखने का विचार आया। आखिर खाली समय का सदुपयोग कैसे किया जाय? उसने इस कार्य के लिए अपने साथियों को राजी कर लिया। बस! अर्थ-संग्रह किया जाने लगा। व्यय का एक बड़ा भाग नरेन ने स्वयम् ओढ़ा। वह प्रधान रसोइया बना और दूसरे लोग उसके सहकारी! अनेक प्रकार के व्यंजन सीख लिये उसने। माँ को पता चला तो वह मुस्कुरा कर रह गई। फिर बोली—

'कोई काम छोड़ना मत तू।'

'जब मैं इस संसार में कुछ सीखने ही आया हूँ तो…।'

माँ कुछ और कहती, इससे पहले ही नरेन छू-मन्तर हो गया।

वह सभी का प्रिय हो चुका था। मुहल्ले के धनी-निर्धन, ऊँच-नीच सभी परिवारों के साथ उसने कोई न कोई सम्बन्ध स्थापित कर लिया था। कोई उसका चाचा था तो कोई ताऊ। चाचियों की तो घर-घर लाइन लगी रहती। न छोटे-बड़े भाइयों की कमी थी और न छोटी-बड़ी बहनों की। यदि कभी मुहल्ले में कभी किसी की मृत्यु हो जाती, तो यह नरेन था, जो दौड़कर सबसे पहले उसे सान्त्वना देने जाता—'चाची! गुरुजी की बात मानूं या तेरा रोना-धोना देखूं।'

शोकाकुल समाज नरेन की ओर उन्मुख हो जाता। नरेन कहता—'गुरु जी कहते हैं। ईश्वर नामक एक बहुत बड़ा कुम्हार

इस संसार में रहना है। वह तरह-तरह के खिलौने बनाता है और प्रकृति के हाथ बेच देता है। खिलौना जब पुराना हो जाता है तो टूट जाता है। हम सब खिलौने ही तो हैं : टूट जाने दे, जो टूट गये। तू अपने मन को जुड़ा रहने दे । सब कुछ ठीक हो जायेगा।'

इस बार शोक-संतप्त स्त्री चकित होकर देखती रह जाती नरेन को। और नरेन उसके आँसू पोंछ देता। उसकी मीठी-मीठी बातों से हरेक का मनोरंजन हो जाता। बढ़े तथा गम्भीर स्वभाव वालों की भी बत्तीसी खुल जाती।

यद्यपि नरेन शरारत के घोड़े सबसे आगे लिए घूमता था पर उसमें अशुभ का स्पर्श न था। उसकी सहज प्रवृत्ति संसार के छद्मपूर्ण तरीकों से उसे सर्वदा दूर रहती। सच्चाई उसके जीवन का मेरुदण्ड हो चुकी थी। न्याय उसके मन की चंचल गति बन गई थी। अन्याय से उसने घृणा करना सीख लिया।

एक दिन गम्भीर्य की प्रतिमा-नरेन को माता रामायण का पाठ पढ़ा रही थीं। अन्य दिनों की तरह नरेन उसके पीछे आ बैठा। उसने श्रीराम के जीवन की कथा सुन रखी थी। इस बार माँ श्री राम का बाल-चरित बाँच रही थीं।

नरेन का बालक-हृदय मुग्ध हो उठा। वह जल्दी से सीता-राम की मिट्टी की युगल-मूर्ति उठा लाया और अपने सामने रखकर ध्यानमग्न हो गया। माँ पाठ करके उठी तो उसने नरेन ओ आध्यात्मिक भावना में डूबा देखा। वह समझी कि नरेन नाटक कर रहा है।

कहने लगी—'अच्छा ठहर तू ! मैं तेरे इस नाटक का भाण्डा फोड़ती हूँ।'

इतना कहकर उसने रामायण को माथे से लगाया और वहीं चौकी पर रख दिया। फिर एक करारी चपत नरेनके गाल

पर। पर नरेन जैसे निष्प्राण पत्थर की मूर्ति था। उसने चूंकारा तक नहीं भरा।

माँ ने जाना कि नरेन मक्कर गाँठ रहा है। अतः उसने उसके सिर में थपथपाया। परन्तु नरेन पहले की तरह आँखें मूंदे बैठा रहा। अब माँ की आँखों में शङ्का के काँटे उग आए। उसने नरेन की बाहें थाम कर झकझोर दिया।

नरेन चौंककर उठ खड़ा हुआ। उसके मुख से निकला-'माँ अभी-अभी मुझे एक विचित्र अनुभव हुआ। मेरी आँखों के बीच तरह-तरह के रङ्ग बदलता हुआ एक अद्भुत आलोक-पुञ्ज आया था। वह धीरे-धीरे मेरी ओर बढ़ा ! मैं उसके पवित्र तेज से नहा उठा। देख छूकर, मेरा शरीर कितना ठण्डा हो रहा है !'

माँ ने उसे छुआ तो उसके हाथ में एक झनझनी सी दौड़ गई—जैसे उसने अपने पुत्र के शरीर पर नहीं किसी बर्फ की पाटी पर हाथ रख दिया हो। उसने बिना सोचे-समझे बालक को अपनी छाती से चिपटा लिया।

इस घटना के बाद से नरेन के लिए जैसे एक नया खेल पता चल गया। वह नित्य प्रातः-सायं एकान्त में आँख मूंद कर बैठने लगा। ध्यान के इस खेल में उसे विचित्र अनुभव हुआ करता उसकी मानसिकता में एक सुपुष्ट बदलाब आने लगा।

अकस्मात् नरेन के पिता को (मध्य प्रदेश) के रायपुर नामक स्थान में जाना पड़ा। नरेन भी उनके साथ गया। उन दिनों रायपुर में कई स्कूल नहीं था। अतः पिता अपने पुत्र को स्वयम् शिक्षा देने लगा। नरेन को पिता के अन्तरङ्ग रूप के परिचय का अवसर मिला। यह उसके सौभाग्य सूर्य को चम-

काने वाली बात थीं, क्योंकि उसके पिता उदात्त और सुसंस्कृत विचारों के थे। पिता ने पुत्र की बुद्धि को अपनी ओर खींचा। वे उसके साथ घंटों ऐसी चर्चा में डूबने लगे, जिनमें विचारों की गहराई और स्वस्थता होती। उन्होंने अपने पुत्र के हाथों बुद्धि की मुक्त लगाम दे दी, नरेन की बुद्धि में विश्वास की किरणें फूटने लगीं—शिक्षा विचारों को लादने में नहीं है—बल्कि सोचने के बिन्दुओं में है।

ठीक दो वर्ष बाद विश्व नाथ दत्त परिवार के साथ कलकत्ता लौट आए। यहाँ नरेन को स्कूल में फिर भरती कर दिया गया। नरेन अब अपनी तथा दूसरों की अच्छाई-बुराई को अच्छी तरह समझने लगा था। पिता को गर्व होने लगा कि इनका पुत्र बौद्धिक प्रतिभा तथा आत्म-सम्मान की भावना से भरा हुआ है।

स्कल के उन्मुक्त वातावरण में नरेन का मन पहले की तरह शरारत करने के लिए कुलबुलाने लगा, 'लेकिन उसने अपनी गम्भीरता का ताला तोड़ना ठीक नहीं समझा। वह बड़े मनोयोग से पढने लगा।

अध्यापकों के आश्चर्य का ठिकाना उस समय नहीं रहा जब उन्होंने देखा कि नरेन ने तीन वर्षों का पाठ्यक्रम एक ही वर्ष में पी लिया है। कालेज की प्रवेश-परीक्षा में भी नरेन विशेष योग्यता के साथ उत्तीर्ण हुआ।

दिन उड़ते चले गए और नरेन ज्ञान के क्षेत्र में उन्नति के शिखर पर चढ़ता चला गया। एण्ट्रैन्स कक्षा में आते-आते उसने अंग्रेजी और बंगला साहित्य के प्रमुख मानक ग्रन्थों पर अधिकार पा लिया। इतिहास की कई किताबें उसके मन में समा गई। भारतीय इतिहास की बारीकियों को उसने छान-छान कर ग्रहण किया।

एक दिन कक्षा में अध्यापक भारतीय इतिहास के सम्बन्ध में कुछ पढ़ा रहे थे। सहसा एक किरण कहीं से आई और नरेन की डेस्क पर बैठ गई। नरेन ने इस अद्भुत आलोक को ध्यानपूर्वक देखा। किरण गायब हो गई। यह देखकर नरेन को बड़ा आश्चर्य हुआ। उसने अध्यापक से कहा—'सर ! आगे वाली बात को मैं बिना पढ़े ही बता सकता हूँ।

'वह कैसे ?'

'सर ! इधर कुछ दिनों से मुझे कुछ ऐसा हो रहा है कि किताब की समूची पंक्तियों को पढ़े बिना ही लेखक के मन्तव्य को समझ लेता हूँ। पैराग्राफ की केवल पहली और अन्तिम पंक्तियों को पढ़ते ही उसका पूरा मर्म मेरे मन में छा जाता है। जाने क्यों, एक ज्ञान-किरण मेरे साथ-साथ चलती रहती है। मैं उसे समझने की चेष्टा करता हूँ तो वह किरण मुझसे कहती है, तुझे अभी बहुत कुछ सीखना है। अब तो ऐसा हो गया है कि पहली और अन्तिम पंक्ति को पढ़ते ही मैं पूरे परे का अर्थ बता सकता हूँ'

अध्यापक के साथ कक्षा के विद्यार्थी भी नरेन की बात सुनकर आश्चर्य-चकित रह गए। विद्यार्थियों के अनुरोध पर अध्यापक ने नरेन की परीक्षा ली। नरेन को वैसा ही पाया था, जैसा उसने कुछ घड़ी पहले कहा था।

अध्यापक के मुख से निकला–'सचमुच तू विलक्षण है।'

एण्ट्रेंस परीक्षा उत्तीर्ण करने के बाद नरेन ने कॉलेज में प्रवेश किया। पहले वह प्रेसीडेन्सी कालेज में पढ़ा, लेकिन जब वहाँ की पढ़ाई में उसे आनन्द नहीं आया तो उसने 'जनरल 'एसेम्बली इन्स्टीटयूट' में प्रवेश ले लिया। यह कालेज 'स्टाकिश जनरल मिशनरी बोर्ड द्वारा चलाया जाता था। अंग्रेजों का

शासन था। इसलिए भारत में आंग्ल शिक्षा, विलायती रहन-सहन और पाश्चात्य सभ्यता ग्रहण करने पर अधिक बल दिया जाता था। नरेन के मन में भारतीय गंगा का पवित्र जल तरंगित होता रहता था। वह भारतीय संस्कृति का सच्चा पुजारी बनना चाहता था। इसलिए उसने भारतीय और अंग्रेज प्रोफेसरों का ध्यान कुछ ही दिनों में अपनी ओर आकर्षित कर लिया। अंग्रेज उसकी विलक्षण बुद्धि देख कर चकित रह जाते।

एक बार कालेज के प्रिन्सिपल डब्ल्यू० डब्ल्यू० हेस्टी कक्षा में आये।

किसी प्रसंग पर उन्होंने नरेन से पूछा—'नरेन! तुम्हारे बारे में मैं बहुत कुछ सुन चुका हूँ। अच्छा! यह बताओ नास्तिक कौन है?'

सुनकर नरेन यकायक खड़ा हो गया। उसने कहा—'सर! नास्तिक वह होता है जो अपने में विश्वास नहीं करता। प्राचीन धर्म कहते हैं कि नास्तिक वह है, जो ईश्वर में विश्वास नहीं करता। पर मनुष्य का धर्म कहता है कि नास्तिक वह है, जो अपने आप में विश्वास नहीं करता।' इस उत्तर को सुनकर हेस्टी साहब की सारी गरिमा पिघल गई। उन्होंने कहा—'फिर ईश्वर कहाँ है?'

'भारत के उन दरिद्र पीड़ित और दुर्बल लोगों के पास जिन्हें कभी तुर्क और मुगल नोंचते रहे और आजकल आपकी सरकार नोंच रही है।'

इस निर्भीक उत्तर को सुनकर हेस्टी साहब चकित रह गए। कहने लगे—'मैंने सुदूर देशों का भ्रमण किया है, पर अभी तक मुझे कहीं भी ऐसा लड़का नहीं मिला, जिसमें तुझ

जैसी प्रतिभा और सम्भावनायें हों। तू जीवन में जरूर अपनी छाप छोड़ जायेगा।'

और इतना कहकर हेस्टी साहब कक्षा से बाहर चले गये। छुट्टी के समय उन्होंने नरेन को अपने आफिस में बुलाया। आदर से बिठाते हुए कहने लगे- 'नरेन! तुमने क्लास में मुझसे जो कुछ कहा, वह बूंद-बूंद सच है। लेकिन में तुम्हें हिदायत करता हूँ कि ऐसी बातें किसी और अंग्रेज के सामने मत कहना, कभी मत कहना?'

'क्यों सर?'

वह तुम्हारी रिपोर्ट कर देगा। हमारी सरकार तुम्हें जेल भेज सकती है।'

सुनकर नरेन मुस्कराया। बोला—'सर! यदि सच बोलने से आपकी सरकार मुझे जेल दे देगी, तो मैं ईश्वर से प्रार्थना करूँगा कि भारत का प्रत्येक मनुष्य मेरी तरह सच कहने लगे और आपकी सरकार सबको जेल का पानी पिलाने लग जाय।'

हैस्टी साहब के मुख से निकला—'तुम जा सकते हो, नरेन।'

उसके बाद से नरेन पाठ्य-क्रम के साथ-साथ पाश्चात्य तर्क शास्त्र के प्रामाणित ग्रन्थों को भी छानने लगा। उसने दो वर्ष में ही पाश्चात्य-दर्शन पर अधिकार पा लिया। यूरोप के विभिन्न राष्ट्रों का इतिहास तो जैसे उसके लिए कंठाग्र हो गया।

एक दिन नरेन कालेज से छुट्टी के बाद घर जा रहा था। रास्ते में एक धना बाग पड़ता था। नरेन के मन में जाने क्या आया, वह बाग की पहली लीक छोड़कर, दूसरी लीक

छोड़कर, तीसरी लीक से चल दिया। अभी वह लीक पार भी नहीं कर पाया था कि उसकी नजर एक कुटी पर पड़ी। वहाँ एक साधु बीमार पड़ा था। दो अन्य साधु रामधुन गाकर उनकी चिकित्सा कर रहे थे। स्थिति समझकर नरेन बोला—अन्धा क्या कहेगा ! पहले यही कहेगा कि मुझे आँख चाहिए, ईश्वर नहीं, इसी प्रकार आज आपके गुरु के लिए पहले औषधि की आवश्यकता है, ईश्वर-नाम की नहीं। जब यह ठीक हो जायेंगे, तो ईश्वर इनके सामने स्वयं आकर खड़ा हो जायेगा। दोनों साधुओं का भ्रम-जाल टूटा तो वे नरेन की प्रशंसा करने लगे।

नरेन रोग-ग्रस्त सन्यासी को स्वयं अपने कंधे पर लादकर डाक्टर के पास ले गया। वह प्रतिदिन उस साधु की कुटी में जाता और उसकी सेवा-सुश्रूषा करता। आठ दिन में साधु का रोग जाता रहा। साधु स्वस्थ हो गया। उसने नरेन को आशीर्वाद देते हुए कहा—'तू दुनिया का सबसे अनोखा लाल होगा। भारत के साथ-साथ विदेशों में भी तेरे गुणों की सुगन्ध फैलेगी !'

नरेन की आँखों में आँसू छलक आये। वह साधु के चरण छूकर कहने लगा—महाराज ! यह मैंने आपसे ही सीखा है कि दुःखी की सेवा में कितना आनन्द है। और जब मैं आनन्द को समझ जाऊँगा तो परमानन्द को पाने का प्रयास करूँगा।'

और उससे दूसरे दिन नरेन की आँखें आश्चर्य फटी रह गयीं, जब उसने देखा कि बाग में कुटी का कहीं पता नहीं है। तो क्या वह साधु अपने चलों सहित कहीं अन्यत्र चला गया ? पर उसे कुटी उखाड़ कर ले जाने की क्या जरूरत थी ? नरेन

ने पाया कि उस स्थान पर कुटी होने के चिह्न तक नहीं हैं ?

'वह भ्रम नहीं, यथार्थ था। मैंने साधु की आठ दिन तक सेवा की है। परन्तु नरेन पूरी बात सोच भी नहीं सका क्योंकि आँखों के सामने एक शुभ्र आलोक आकार छिटक गया था। उसने आँखों पर पलकें ढाँप लीं और अनन्त, अतल आनन्द-सागर में डूब गया।

कुछ दिनों बाद नरेन महर्षि देवेन्द्रनाथ ठाकुर के सम्पर्क में आये उनके सहयोग सेही आपका स्वामी रामकृष्ण परमहंस से परिचय हुआ और उनके प्रति प्रेम बढ़ातो बढ़ता ही गया।

एक बार श्री रामकृष्ण नरेन को एक बगीचे में ले गये। चारों ओर की हरियाली मन मोह रही थी। रामकृष्ण ने कहा–'उस नीम के पेड़ को देख रहे हो न और उस चबूतरे को भी। चलो नरेन वहीं बैठकर कुछ काम की बातें करेंगे।'

दोनों व्यक्ति पक्के चबूतरे पर बैठ गए। सहसा श्रीराम-कृष्ण ने भावाविष्ट होकर नरेन का स्पर्श किया। नरेन सारी संज्ञा खो बैठा। उसकी सारी सावधानी धरी की धरी रह गई।

जब वह प्रकृतिस्थ हुआ तो उसे लगा कि श्री रामकृष्ण उसकी पीठ पर हाथ फेर रहे हैं।

इस बार नरेन समझ गया कि श्री रामकृष्ण कोई साधा-रण महात्मा नहीं हैं। वह सचमुच विलक्षण पुरुष हैं। उसने उनके चरणों का स्वयम् स्पर्श करके कहा–'प्रभो! मुझे विश्वास हो गया है कि आप मुझे ईश्वर के दर्शन करा देंगे। जिस शक्ति की मैं खोज में था, वह मुझे मिल गई। अब मैं आपके माध्यम से उस अलौकिक शक्ति को अनुभव कर सकूंगा। मेरे मन में आपके पागल होने की जो धारणा थी, वह घुल गई है। आपकी

शत-शत बार बंदना करता हूँ। आप एक महान आध्यात्मिक पुरुष हैं।'

श्री रामकृष्ण के प्रेम ने नरेन के मन को जीत लिया, परन्तु नरेन अभी भी उन्हें गुरु के रूप में स्वीकार करने के लिये तैयार नहीं था। एक मनुष्य चाहे कितना भी महान क्यों न हो, अमोघ पथ-दर्शन कैसे कर सकता है? अतः उसने निश्चय किया कि श्री रामकृष्ण को किसी-कसौटी पर कसे बिना गुरु के रूप में कभी स्वीकार नहीं करूँगा।

इसी सोच-विचार में नरेन के दो माह पार हो गए। यद्यपि रामकृष्ण के प्रति उसके मन में श्रद्धा-सुमन खिल चुके थे, तथापि तर्क की ओस ने उस फूल को पूर्ण रूप से नहीं खिलाया था। उसे मूर्ति-पूजा में विश्वास नहीं था - वेदान्त के अद्वैतवाद में विश्वास नहीं था, किसी भी बात में विश्वास नहीं था।

अन्त में जब वह श्री रामकृष्ण को किसी भी रूप में स्वीकार करने को तैयार नहीं हुआ, तो श्री रामकृष्ण ने पूछा, जब तू मेरी बातों में विश्वास नहीं करता है, तो मेरे पास आता ही क्यों है?

'क्योंकि मैं आपका आदर करता हूँ, प्रेम करता हूँ। पर इसका मतलब यह तो नहीं कि मैं बिना सोचे-समझे आपकी बातों को मान लूँ।'

श्री रामकृष्ण नरेन की बौद्धिक-निष्ठा से खुश हो गए। बोले—'पुत्र! तेरी तरह मेरे अनेक शिष्य हैं, पर इतना साहस किसी में नहीं है कि वह मेरी अनुभूतियों को चुनौती दे सके। तू सचमुच प्रज्ज्वलित अग्नि के समान है। तुझे कोई अपवित्रता छू नहीं सकती। तू कभी गलत कदम रख नहीं सकेगा। आज

से तुझे किसी प्रकार का निषेध नहीं है । जब तू मुझे अभी अपना गुरु नहीं मानता तो मैं भी तुझे शिष्य क्यों कहूँ ? तू मेरे आश्रम में आने-जाने के लिए स्वतन्त्र है वत्स !

नरेन जैसे धन्य हो गया । वह एक मन से कुछ सोचने लगा । तभी श्री रामकृष्ण मुस्कुराते हुए उठे और उसे छोड़कर चले गए ।

तीन

सभी रामकृष्ण परमहंस कमजोर हो थे ही बीमार भी रहने लगे थे । ज्यों-ज्यों उनकी बीमारी बढ़ती जाती, त्यों-त्यों वह अपने शिष्यों को आध्यात्मिक निर्देश देते चले जाते । अपनी बातें सहजता से करते और ईश्वर के साथ ऐक्य का ज्ञान बताते चले जाते ।

काशीपुर के बगीचे में श्री रामकृष्ण अपने शिष्यों के साथ अकेले रहते थे । नरेन की प्रेरणा से इन सबने अपना घर बार सब कुछ छोड़ दिया था । वे श्री रामकृष्ण की सेवा में जी-जान से जुट गए । नरेन उनके लिए सतत: प्रेरणा के स्रोत थे ।

जब कभी थोड़ा सा समय मिलता, नरेन सबको इकट्ठा करता । वह समय अध्ययन, संगीत, वार्तालाप और श्री रामकृष्ण की चर्चा में बिताया जाता । हर प्रकार से नरेन उनका अगुआ था ।

श्री रामकृष्ण की महा-समाधि का दिन जैसे जैसे नज-

ठीक आता जाता, नरेन की ईश्वर-दर्शन की आकुलता वैसे वैसे तीव्र होती जाती। श्री रामकृष्ण प्रायः ध्यान पर अधिक जोर देते। ध्यान की गहराइयों में नरेन ने कई अनोखी चीजों का अनुभव किया।

एक दिन श्री रामकृष्ण ने माँ काली के दर्शन किए। फिर दो मिनट का ध्यान रखने के बाद कहा—'नरेन ! मैंने तुझे अपना परम शिष्य मान लिया है ! मैं तेरे संरक्षण में इन सबको छोड़ता हूँ। देखना, मेरे चले जाने के बाद भी वे साधक-भजन करते रहें और घर वापस न जायें।'

नरेन ने गुरु की वाणी को हृदय में सजाया। इसके बाद श्री रामकृष्ण बोले अब तुम सब सन्यासियों की तरह घर-घर जाकर भिक्षा माँग लाओ।'

सभी शिष्यों ने भिक्षा संग्रह की। फिर उसे बगीचे में पका कर श्री रामकृष्ण को निवेदित किया—स्वयम् भी खाया। श्री रामकृष्ण की खुशी का ठिकाना नहीं रहा।

वे समझ गये कि शीघ्र ही ये बालक त्याग का गैरिक वाना धारण कर लेंगे। ईश्वर की खोज में अपना तन-मन न्यौछावर कर देंगे। उन्होंने सरल चित्त से कहा 'तुम सब सन्यासी के रूप में दीक्षित होना चाहते हो ?'

सबसे पहले नरेन ने आगे आकर कहा—'मैं सन्यास ग्रहण करना चाहता हूँ।'

श्री रामकृष्ण की आँखों से प्रेमाश्रु झरने लगे। उन्होंने नरेन के साथ-साथ अन्य शिष्यों को भी दीक्षित किया।

सभी के हृदय की कामना पूर्ण हो गई, नरेन का नाम विवेकानन्द हो गया। वह अब नरेन न होकर 'स्वामी बिवेकानन्द' थे। वह विवेकानन्द जिन्होंने आध्यात्मिक दर्शनों की

चूड़ान्त महिमा तो प्राप्त कर लिया था । उन्हें निर्विकल्प समाधि के लिए आकुलता दिखाई थी ।

विवेकानन्द की तीव्र कामना थी कि मैं न दीखने वाले चैतन्य सागर में अपने अहं को डुबो दूं । पर कैसे ? रामकृष्ण तो उन्हें कुछ बताते ही नहीं थे । बस, इतना ही कहते थे, 'समाधि लगाओ । अनिवर्चनीय अनुभूति तुम्हें स्वयम् हो जायेगी ।'

इधर आठ दिन से बराबर वह उस अनुभूति को पकड़ने का प्रयास कर रहे थे । रामकृष्ण उनके अनुभवों की 'रपट' प्रतिदिन पूछ लेते और हँसकर रह जाते ।

एक दिन संध्या को स्वामी विवेकानन्द ने कहा 'गुरुदेव ! अब मैं समाधि में अपना समय और अधिक नष्ट नहीं करूँगा । मैं स्वयम् कोई सरल मार्ग ढूढ़ लूंगा ।'

रामकृष्ण ने उत्तर दिया—'अब तो किनारे पर खड़ा है ।'

'किनारे पर ?'

'हाँ विवेकानन्द । तू अपने विवेक को अनुभूति के सागर में डुबो दे । आज तू परमानन्द को पकड़ लेगा ।'

विवेकानन्द बगीचे में एक पेड़ के नीचे जा बैठे । आँखें बन्द की और ध्यान में डूब गए । वह सारा देह-बोध खो बैठे । डूबे । अब डूबे—और कुछ ही क्षणों में उनका मन अति चेतन की गोद में जा बैठा वह अवस्था थी निर्विकल्प समाधि की ।

थोड़ी देर बाद विवेकानन्द ने अपने गुरु को अनुभव सुनाया तो श्रीरामकृष्ण बोले—मैंने जगन्माता से प्रार्थना की है कि वह नरेन की इस समाधि के अनुभव पर परदा डाले रखें । अभी तेरे द्वारा बहुत सारा कार्य होना है । पर यह परदा इतना झीना है कि किसी भी समय फट सकता है !'

इतना कहकर श्रीरामकृष्ण ने नरेन को अपने पास बुलाया। उनके सिर हाथ फेरा। बोले—'कल्याण करो! जगत का कल्याण करो।

और उनका शरीर शिष्यों को घोर शोक में डुबाकर ईश्वर-सागर में छिप गया।

नरेन स्वामी विवेकानन्द हो चुके थे। उन्होंने शिष्यों को समझाया। फिर एक संध्या 'सन्यासी-संघ' का गठन किया। जो लड़के चले गए थे, विवेकानन्द उनके घर पहुँचे। उन्हें 'सन्यासी संघ' में शामिल होने की प्रेरणा दी। कर्त्तव्य बोध कराया। उत्साह का सुदर्शन-चक्र छोड़ा। इसके बाद बराह नगर में रामकृष्ण-संघ पहला मठ खड़ा किया।

समय बीतता गया। मठ में भजन, कीर्तन तथा प्रवचन का प्रकाश बंगाल के घर-घर में छिटकता चला गया। एक के बाद एक युवा शिष्य मठ के झंडे के नीचे इकटठे होते गए। कोई भी ऐसा नहीं था, जो विवेकानन्द के प्रवचनों को काटने का साहस करता। कोई भी ऐसा साहसी नहीं था जो उनकी आध्यात्मिक प्रेरणा का प्रतिरोध करता। विवेकानन्द ने जैसे अपने पवित्र-प्रेम सूत्र में सबको बाँध लिया था। जैसे माला एक थी और उसमें माणिक अनेक।

कभी-कभी विवेकानन्द के सामने भोजन-वसन की समस्या उठ खड़ी होती। भिक्षा थोड़ी मिलती थी और भोजन का पेट बड़ा होता था। पर विवेकानन्द अपने साथियों को समझाते 'क्या हम भूखे रहकर अपने गुरु के आदर्शों का पालन नहीं कर सकते? यदि हम भूख से डर जायेंगे तो गुरु के निर्देश अधूरे रह जायेंगे।

संगी-साथी आधा पेट भोजन करके साधना और प्रार्थना

में अपने को निमग्न कर देते। स्वामी विवेकानन्द सदैव ही उन्हें जलते हुए त्याग और तेज से भक्ति के लिए प्रेरित करते रहते। प्राच्य और पाश्चात्य दर्शनों के अध्ययन में घंटों बिता देते। जो भी उनके प्रभाव में आता, उसे वे ईश्वर के भाव से भर देते।

धीरे-धीरे सन्यासियों का यह संघ एक शहीद की तरह उल्लास की साधनाओं में रत होता जा रहा था।

इसी समय विवेकानन्द ने ईश्वर से मिलने के लिए आजन्म ब्रह्मचारी रहने तथा त्याग का व्रत ग्रहण करने की प्रतिज्ञा की। पुराना संसार नयी गलियों में बिखर गया। नया संसार प्रकाशमय हो उठा।

विवेकानन्द को एक चिन्ता थी कि किसी प्रकार सन्यासियों का यह भ्रातृ संघ बना रहे। पर दूसरी ओर वह स्वयम् आकाश के बितान के नीचे एक निर्मम मौन में अपने को खो देने का मार्ग भी ढूंढ़ रहे थे। दो वर्षों तक विवेकानन्द कभी दूर चले जाते तो कभी पास आ जाते। वह यह निश्चय नहीं कर पा रहे थे कि मठ में रहकर विश्व को कुछ दे सकते हैं या मठ से दूर जाकर!'

एक दिन वह समाधि लगाए बैठे थे। अचानक उन्हें लगा कि उनके सामने कोई आकर खड़ा हो गया है। वह उनसे कह रहा है—'ठहरना ही मृत्यु है!'

उसी क्षण उनकी आँख खुल गई। देखा—उनके सामने कोई नहीं था। फिर यह रहस्यपूर्ण बात किसने कही? इस प्रश्न का उत्तर उन्हें शीघ्र मिल गया। वह समझ गए कि उनसे ऐसा क्यों कहा गया है? किस लिए कहा गया है?

दूसरे दिन उन्होंने कलकत्ता छोड़ दिया।

उनके साथ चार शिष्यों ने भी कलकत्ता छोड़ा । अब स्वामी विवेकानन्द ने देश-भ्रमण की योजना बनाई । वे अपने शिष्यों के साथ वाराणसी, अयोध्या, लखनऊ, आगरा, वृन्दावन, हाथरस होकर हिमालय की ओर निकल गए ।

हाथरस में स्वामी जी ने स्टेशन के स्टेशन-मास्टर शरदचन्द्र गुप्त को अपना शिष्य बनाया । यह व्यक्ति सदानद के नाम से प्रसिद्ध हुआ । कुछ समय तक स्वामी विवेकानन्द हिमालय में भ्रमण करते रहे । बाहर की दुनिया जैसे उनके निर्जीव हो गई । लेकिन हिमालय के वातावरण ने स्वामी तथा शिष्यों के शरीरों को कमजोर बना दिया । उनका स्वास्थ्य ढीला पड़ने लगा । अत: वे बराहनगर के मठ में लौट आये ।

पहली बरसात गुजरने के बाद विवेकानन्द के कदम पुन: उठ गए । वे रास्ते की धूल को पवित्र करते हुए गाजीपुर जा पहुँचे । यहाँ उन्होंने प्रसिद्ध संत पवहारी बाबा से भेंट की । पवहारी बाबा कठोर तपस्या तथा योग के पुन्ज थे । वे पहुँचे हुए संत माने जाते थे । विवेकानन्द ने उनसे कुछ प्रश्न पूछे । मगर सन्त पवहारी उन्हें सन्तोषजनक उत्तर नहीं दे सके ।

विवेकानन्द का हृदय कलप उठा—क्या यही सन्तों का जीवन है ? जिनके पास सांसारिक वन्धनों का जाल है—लोभ-मोह के काँटे है । विवेकानन्द का सन्ताप आपे से बाहर होने लगा । उनका हृदय बाहर के बंधनों से पूरी तरह मुक्त होने के लिए कुलबुला उठा । वे हिमालय के किसी गहन कोने में बैठ कर घोरतम साधना में लीन हो जाना चाहते थे । प्रचण्ड आध्यात्मिक शक्ति की अजस्र धारा में नहीं बहना चाहते थे ।

इस कुलबुलाहट ने उन्हें एक स्थान पर कभी ठहरने नहीं दिया । वे अपने गुरु-भाई अखण्डानन्द से मिले, जो कुछ

दिन पूर्व तिब्बत यात्रा से लौटे थे। उनसे भर मुट्ठी अनुभव लिया। फिर अपने शिष्यों और मित्रों से कहा– 'मैं जा रहा हूँ—और जब तक मैं समाज पर एक बम की तरह नहीं फूट पड़ता और उसे प्यारे शिष्य की तरह अपना अनुसरण कराने में नहीं लगा सकता, तब तक मैं नहीं लौटूंगा।'

शिष्यों ने स्वामी विवेकानन्द के चरणों की धूल उठायी और माथे पर सजा ली।

विवेकानन्द पुरानी यादों को छोड़ते हुए, घर, गांव की चिन्ताओं को भूलते हुए, दूर हिमालय में पहुँचे। उनके साथ प्रमदादास नामक शिष्य भी थे।

हिमालय के जलप्रपात और झरनों ने उनकी आँखों में नयी रोशनी भर दी। घने जङ्गलों की विचित्र दृश्यावली ने मन में मोती लुटा दिए। जङ्गल की अनुपम शोभा और शान्ति ने पीत किरणों का जाल बिछा दिया। स्फूर्तिदायक वातावरण ने स्वामी जी के हृदय में उत्साह का संसार बसा दिया। फिर शुभ्र दूधिया बर्फ से ढके अभ्रकण शैल-शिखर अपनी झलक से उनका मन अपनी ओर खींचने लगे। सचमुच उनका मन एक अविराम स्निग्धता से भर गया।

सब समय स्वामी जी के मन में ईश्वर ही बसा रहता। भारत में इधर-उधर घूमते समय उन्होंने तरह-तरह के लोगों से भेंट की। कभी वे किसी भिखारी के घर रुक जाते तो कभी किसी दुःखी परिवार के साथ। उन्होंने महाराजा का अतिथि बनकर भी देखा और प्रधान मंत्रियों से भी बातचीत की। जब कभी उन्हें कोई नई बात दिखाई दे जाती तो वे उस धनी व्यक्ति से कहे बिना नहीं चूकते थे।

एक बार एक धनाढ्य से उन्होंने कहा—मित्र ! एक पेड़

पर दो पक्षी बैठे हैं। एक पक्षी फल खा रहा है और दूसरा फल खाने वाले को देख रहा है। जानते हो खाने वाला पक्षी कौन है—जीव ! और देखने वाला कौन है—ईश्वर ! तुम यह क्यों सोचते हो कि तुम्हारे कार्यों को कोई नहीं देख रहा है। परमात्मा की पूर्ण दृष्टि सब पर रहती है। तुम अकेले मत खाओ। दूसरों को खिलाकर खाओ !'

उस समय वह धनी व्यक्ति कुछ नहीं समझा, लेकिन जब वह घर पहुँचा तो उसे विवेकानन्द की बात याद आई। वह अपनी मेज पर खाना खाने जा रहा था कि उसके कान में पड़ोसी की आवाज पड़ी। वह चौंक-सा गया। तुरन्त पड़ौसी के घर की ओर दौड़ा। देखा कि दो दिन से उसके बच्चे भूखे हैं उसकी पत्नी बच्चों को किसी प्रकार समझा रही थी।

वह समझ गया कि स्वामी जी के कहने का मतलब क्या था ? उसका हृदय दया से भीग उठा। उसने पड़ौसी के घर अन्न-वस्त्र आदि भेजे और उससे क्षमा माँगी।

दूसरे दिन जब वह स्वामी विवेकानन्द से मिला तो उसका हृदय किसी भीतरी खुशी से फूल उठा। स्वामीजी ने उसे देखते ही कहा 'मित्र ! तुमने जो कुछ किया है उससे ईश्वर सन्तुष्ट है। तुम्हारा कल्याण हो !'

धनी व्यक्ति विवेकानन्द के चरणों पर गिर पड़ा। अपने आँसुओं से उनके पांव भिगो दिये।

ऐसे हो गये थे विवेकानन्द ?

लोग देखते और सुनते तो उनके मुख से निकलता—जाने कैसा है यह व्यक्ति ? इसे अपनी नहीं, दूसरों की पीड़ा सदा सताती रहती है।

चार

अपने गुरु की भावना को पूर्ण रूप देने के लिए स्वामीजी ने देशभर में भ्रमण करते हुए वेदान्त का प्रचार शुरू कर दिया देश के लगभग सभी प्रान्तों में उपदेश देते हुए वे राजपूताने में पहूँचे और विभिन्न राजाओं को अपना मतानुयायी बना लिया।

राजपूताने की यात्रा करते हुए विवेकानन्द खेतड़ी के राजा के यहाँ पहुँचे। उन्होंने अपनी अमृत वाणी सुनाई तो खेतड़ी के राजा ने उनका शिष्य बनना स्वीकार कर लिया। राजा साहब विवेकानन्द के साथ जयपुर तक आये।

इस लम्बी यात्रा से उसके मन में मौलिक चिन्तन के बबूले उठे। उन्होंने अथक खोज द्वारा पाया कि सब रीति-रिवाज, सारी परम्परायें अन्तराल-में कभी न मिटने वाली एकता के ही विराट बिन्दु हैं। भारत भले ही पिछड़ गया है, अपनी करनी से पतित हो गया है. पर उसके रजकणों में अभी भी ऐसी बिजली है जो एक बार फिर सारे संसार में अपनी रोशनी को फैला सकती है।

सोचते-सोचते स्वामी जी का मन भारत की भयाह दरिद्रता के बीच आकर खड़ा हो गया। वह सोचने लगे—कभी का सम्पन्न भारत आज विपन्न क्यों है ? तभी उन्हें अपने गुरु के शब्द स्मरण हो आये —'धर्म भूखे पेट के लिए नहीं है।'

इसी प्रसंग में उन्होंने मैसूर के राजा से कहा था—'राजा साहब ! आज दुनियां के लोगों को यह नहीं मालूम है कि भारत का धर्म सबसे बड़ा है। यह एक ऐसा धर्म है जिसने दुनिया को सूर्य के दर्शन कराये थे। इस धर्म से पहले भला कौन जानता था कि ईश्वर हैं और वह दयालु हैं। ईश्वर हैं और वह घट-घट में बसा हुआ है। प्रायः सब लोग तलवार और रक्त का धर्म जानते थे। मनुष्य से मानव को मारने का धर्म जानते थे। मैं भारत के सच्चे धर्म की किरणें फैलाने के के लिए अमेरिका जाना चाहता हूँ। इस समय भारत पश्चिम के भौतिक शिकंजे में है। मैं पश्चिम वालों की आँखें पूरब के सूर्य से खोलना चाहता हूँ। आलोक सबसे पहले पूरब में हुआ था। मैं पूरब का वेदान्त-दर्शन पश्चिम वालों को देना चाहता हूँ, क्योंकि पश्चिम से होकर यदि वेदान्त की धारा पूरब में पुनः आएगी तो सारा पूरब उसमें स्नान करने के लिए फिर से दौड़ पड़ेगा। आज का पूरब पश्चिम की ओर निहारने लगा है। उसका मुख मोड़ने का एकमात्र उपाय मेरी समझ में यही आ रहा है।'

मैसूर के राजा स्वामी जी के इन विचारों से बहुत प्रभावित हुए थे। उन्होंने कहा था 'स्वामी जी ! आपके अमेरिका जाने का सारा प्रबन्ध मैं करूँगा।'

स्वामी जी बड़े प्रसन्न हुए।

सहसा उनके सामने दो गुरु-भाई आकर खड़े हो गए—स्वामी ब्रह्मानन्द और स्वामी तुरियानन्द।

स्वामी विवेकानन्द उनसे मिलकर बड़े प्रसन्न हुए। इधर उधर की वार्ता का सिलसिला बँधा तो स्वामीजी ने गुरु-भाइयों के सामने भी अपनी योजना के बन्धन खोले। वह कहने लगे—

'बन्धुओ ! मैं भारत के कोने-कोने में घूमा हूँ, पर भाई ! अपनी आँखों से लोगों की विकट दरिद्रता और दुःखों को देखकर मेरा हृदय दग्ध हो उठा है। मैं अपने आँसू नहीं रोक सका। अब यह मेरा दृढ़ निश्चय है कि उनकी गरीबी और दुःखों को पहले दूर किए बिना उनमें धर्म की बातें फैलाना बिल्कुल व्यर्थ है। यही कारण है कि मैं अमेरिका जा रहा हूँ! वहाँ मैं भारत की गरीबी की मुक्ति के लिए साधन जुटाऊँगा। आज पश्चिम वालों ने सारे भारत को लूट लिया है। मैं चाहता हूँ कि अब पश्चिम वाले अपने पास से कुछ न दें तो कमसे कम भारतसे लूटा हुआ धन ही वापिस करा दें। मैं उन्हें समझाऊंगा कि लूट-खसोट पाप है। जो जिसका है उसे ही मिलना चाहिए—यही धर्म है।

दोनों गुरु-भाइयों के कानों में स्वामी जी के पीड़ित स्वर गूंजने लगे। स्वामीजी ने आगे कहा—'भाइयो ! तुम्हारे धर्म को समझाने में मैं अब भी असमर्थ हो रहा हूँ। मैं तो यहाँ तक कहने को तैयार हूँ कि तुम्हारा यह तथाकथित धर्म लाखों नंगो-भूखों को रोटी-कपड़ा नहीं दे सकता। वे फिर एक बार बुद्ध के काल में पहुँच जायेंगे—उस बुद्ध के काल में जहाँ सब भिक्षु ही भिक्षु दिखाई देने लगे थे। क्या उन्हीं भिक्षुओं का नराधम चंगेज खाँ ने रक्त नहीं बहाया था? भाइयो ! भारत को आज ऐसा धर्म देने की जरूरत है, जो कर्म से दूर न हो। आज भगवान श्रीकृष्ण के कर्म वाले धर्म की जरूरत है भारत को—और सेवा धर्म की पवित्र धारा को मैं पश्चिम से बहाकर पूर्व में पुनः लाना चाहता हूँ। बोलो, तुम मुझे इसमें कितना सहयोग दोगे?'

कहते-कहते विवेकानन्द के चेहरे पर गहरी पीड़ा की छाप उभर आयी। तीव्र भावों से विह्वल होकर उनका शरीर

काँपने लगा। अपनी छाती पर हाथ रखकर बोले--'मेरा हृदय अत्यधिक फैल गया है। मैंने अनुभव करना सीखा है। विश्वास करो, मैंने अभी-अभी जो कुछ कहा है, वह सूर्य की तरह स्पष्ट और सच है। उसमें अनुभव की लाली है और धरती का पीलापन है।'

उनका कठ-स्वर रुद्ध हो गया और वे अधिक कुछ नहीं कह सके। उनके कपोलों पर आँसुओं की भागीरथी बहती रही।

स्वामी तुरियानन्द जी ने मौन तोड़ते हुए कहा-बंधुवर! सचमुच तुम्हारे शब्दों में मानवता को कुछ देने की पीड़ा छटपटा रही है। दुःख और कष्ट तुम्हारे हृदय में स्पन्दित हो रहा है। तुम्हारा हृदय आज एक विशाल देश हो चुका है, जिसमें मानव जाति के सारे दुःखों और कष्टों को औंटाकर पीड़ानाशक रसायन बनाया जा रहा है। तुम्हारे हृदय में जो ज्वालामुखी भड़क रहा है उसे देखे बिना कौन समझ सकता है। तुम अवश्य अमेरिका जा सकोगे।'

स्वामी विवेकानन्द ने गुरु-भाइयों की प्रेरणा को हृदय में सजा लिया।

'अगले दिन स्वामी जी मद्रास की यात्रा पर चल पड़े। गुरु-भाइयों ने मद्रास में पहले से ही सूचना भेज दी थी कि विवेकानन्द आ रहे हैं।

मद्रास पहुँचते ही लोग उनसे भेंट करने के लिए टूट पड़े। उस समय ऐसा लगा, मानो जन-समुद्र स्वामीजी के चरण धोने के लिए उमड़ पड़ा हो।

स्वामी जी सभी छोटे-बड़े से प्रेम सहित मिले। उन्होंने उत्साही युवकों को कुछ करने की प्रेरणा दी।

शाम को एक प्रवचन में उन्होंने लोगों से कहा—'महानुभावो ! मैं 'धर्म महासभा' में भाग लेने के लिए अमेरिका जाना चाहता हूँ। भारत परतंत्र है। उसे पश्चिम के लोगों ने गुलामी की जंजीरों में जकड़ दिया है। मैं उस जंजीर को काटने के लिए एक नई भूमिका रखूँगा। मेरी इच्छा है कि आप लोग उसमें अपना योगदान दें।

स्वामी जी के कहने का अर्थ सब लोग समझ गए। फिर शिष्यों ने स्वामी जी के अमेरिका जाने का व्यय-भार अपने कंधों पर ओढ़ा। देखते-देखते हजारों रुपयों की राशि इकट्ठी हो गई। धनी लोगों के अलावा गरीबों ने भी भर मुट्ठी पैसे विवेकानन्द की झोली में डाले।

कुछ दिन मद्रास में और रहकर स्वामी जी के पग अमेरिका जाने के लिए उठ गए। 31 मई 1893 का दिन भारत के बच्चे-बच्चे को याद रहेगा। उस दिन स्वामी जी बम्बई से जहाज में अमेरिका के लिए रवाना हुए थे।

कौन ऐसा भारत माँ का बालक होगा जिसने स्वामी विवेकानन्द के चरणों में श्रद्धा-सुमन न छोड़े हों !

•

पाँच

अन्त में थकावट से चूर-चूर और असहाय होकर स्वामी विवेकानन्द कुछ सोचने लगे। उस ठण्डी रात में भी उनका मस्तक जल रहा था। उनके हृदय में ज्वालामुखी उमड़ रहा था। उनकी समझ में नहीं आ रहा था कि क्या किया जाय ?

तभी उनकी नजर लकड़ी के एक बड़े और खाली बक्से की ओर गई।। वह जल्दी से बक्से में घुस गए।

ठंड कम हुई तो उनकी आँख झप गई। सुबह को शिकागो स्टेशन के स्टेशन-मास्टर ने देखा कि स्वामी जी संदूक से बाहर निकल रहे हैं। स्टेशन मास्टर आश्चर्य से भर उठा—एक भारतीय इस सन्दूक में क्यों घुसा बैठा था? कहीं यह कोई चोर तो नहीं है? लेकिन यह तो कोई संत मालूम पड़ता है?

स्टेशन-मास्टर दबे पाँव उनके सामने आया। उनका परिचय पूछा। स्वामी जी ने अंग्रेजी में पूछे गए प्रश्न का उत्तर भी अंग्रेजी भाषा में ही दिया— मैं एक भारतीय हूँ। यहाँ धर्म-महासभा में आया हूँ।'

सुनकर स्टेशन-मास्टर ठहाका मारकर हँसा। फिर बोला—'एक इण्डियन आई मीन एक गुलाम देश का संत धर्म सभा में कैसे आ सकता है!'

उसने समझा कि अवश्य यह कोई पागल व्यक्ति है। वह चुपचाप मुँह बनाता हुआ चला गया।

स्वामीजी ने अपना रास्ता पकड़ा। वह लंका, पेनांग, सिंगापुर और हांगकांग होते हुए पहले केंटान और नागासाकी पहुँचे थे। वहाँ से थलमार्ग द्वारा ओसाका, क्योटा और टोकियो होते हुए याकोहामा गये। जलयान की यात्रा के लिए उन्होंने अपने को अभ्यस्त कर लिया था। उन्होंने स्वभाव की तरङ्गों के उत्थान-पतन में हवा के झोकों में, मेघों के बदलते हुए सौन्दर्य में जाने कितने रूप देखे थे। समुद्र यात्रा के नये-नये अनुभवों को हृदय-सागर में स्नान कराया था। रास्ते की साँसों की माला में पिरोया था। चीनी और जापानी मन्दिरों में भारत के देवी-देवताओं की झाँकी देखकर अपने मस्तक को झुकाया था।

चीन में संस्कृत की पाण्डुलिपियों को देखकर उनके आश्चर्य का ठिकाना नहीं रहा था। उसी तरह जापान में पुरानी बंगला भाषा के ग्रन्थों को देखकर अचरज की धरती में अपने को गाढ़ दिया था—किन्तु शिकागो की सभ्यता को देखकर उन्हें आघात पहुँचा। उन्हें लगा कि उनकी आशाओं की तुषार निकलता जा रहा है। वे भारतीय धर्म के बारे में किसी को कुछ नहीं बता सकेंगे।

उन्हें लगा कि वे भारत से यहाँ बहुत पहले चले आये।

सहसा उन्हें भूख सताने लगी। उनकी जेब खाली हो चुकी थी। इस विभाग से उस विभाग के चक्कर काटने में उनका सारा धन पानी के मोल बह गया था। तब कहीं उन्हें पता चल पाया था कि धर्म महासभा सितम्बर में होगी। पर अभी तो दो माह शेष हैं। स्वामीजी स्टेशन से निकल कर आगे चल दिये।

अब उन्हें भोजन-पानी का प्रबन्ध करना था। पर यह क्या ? वह जिस दर पर जाते वही उन्हें दुत्कार देता। वह भारतीय थे, गुलाम देश के मानव थे, इसलिए कौन उन्हें भोजन कराये ?

स्वामीजी नगर के सम्पन्न निवासियों के पास गये। पर किसी ने अपमान और दुत्कार के सिवा उन्हें कुछ नहीं दिया। वे चलते ही गये। अन्त में थक कर वह सड़क, के बाजू में चुपचाप बैठ गये और सोचने लगे, ईश्वर की जो इच्छा होगी, वैसा ही होगा। ईश्वर सब देख रहा है "मैं तो एक छोटा-सा बन्दा हूँ यहाँ मैं कुछ देने आया हूँ, लेने नहीं। यदि भगवान नहीं चाहते कि मैं इस देश का अन्न-जल ग्रहण करूँ तो न सही—मैं बिन खाये-पीये ही लोगों को समझाऊँगा।'

अभी स्वामी जी ऐसी बातें सोच ही रहे थे कि इतने में एक बँगले का द्वार खुला। उनमें से एक सुन्दर महिला बाहर निकली। यही कोई चालीस के आसपास होगी उसकी आयु। सिर के बॉब-कट बाल, आँखों में कुछ जानने की लालसा। वह नीचा गाऊन पहने हुए थी।

उसने अपने गोरे-गोरे पाँवों को सड़क की ओर बढ़ाया। थोड़ी देर में वह स्वामी जी के सामने आकर खड़ी हो गई। दायें हाथ का पर्स घुमाते-घुमाते हुए पूछने लगी—'महाशय ! आप कौन हैं ?'

स्वामी जी ने चौंक कर उस महिला के चेहरे पर देखा। सुसंस्कृत महिला मालूम पड़ रही थी।

धीरे से बोले—'मैं एक मनुष्य हूँ सिस्टर !'

इस उत्तर को सुनकर महिलाचकितरह गई। आज तक इतना सार-गर्भित उत्तर उसे किसी अमेरिका वासी ने नहीं दिया।

'मनुष्य तो आप जैसे सभी होते हैं। पर मेरा मतलब है कि आप यहाँ किस मतलब से आये हैं ?'

'धर्म महासभा में शामिल होने के लिए।'

'तो क्या आप कोई प्रतिनिधि हैं ?

'यही समझो।'

'क्या मतलब ?'

स्वामी जी ने उसे अपनी कठिनाई बताई।

सहृदय महिला का हृदय रो उठा। उसने अपने देश वासियो को बुरा भला कहा। क्योंकि उन्होंने एक विद्वान व्यक्ति का अनादर किया था। फिर बोली-'यदि आपको कोई आपत्ति न हो तो आप मेरे घर चलें।'

स्वामी जी उसके बङ्गले में पहुँचे।

महिला ने भोजन कराया और उन्हें वचन किया कि वह स्वयम् उन्हें धर्म महा-सभा के कार्यालय में ले जायेगी।

स्वामी जी बड़े कृतज्ञ हुए। उस स्त्री का नाम श्रीमती जार्ज डब्लू० हेल था। वह बड़ी सुहृदया महिला थी।

उसने दया से भर कर कहा—'सेण्ट जी ! आज की रात आप मेरी कॉटेज में ही विश्राम करें। कल प्रात: मैं आपके साथ मिशन पर चलूंगी।

'जैसी तेरी इच्छा !' स्वामी विवेकानन्द ने श्रीमती हेल को छोटा-सा उत्तर दिया और वहीं दीवान पर लेट गये। आधी रात बीत गई, पर उनकी आँखों में नींद नहीं आ रही थी। वह उठ कर बैठ गये और लय के साथ एक भजन गाने लगे। गाते गाते वह अपने को भूल गये। उन्हें पता नहीं चला कि कब श्रीमती हेल अपने बच्चों सहित दरवाजे पर आकर खड़ी हो गई थीं और मन्त्र-मुग्ध होकर स्वामी जी का भजन सुन रही थीं।

बाहर का जादू तो तब टूटा जब स्वामी जी ने अपना भजन समाप्त किया।

श्रीमती हेल बोलीं—'स्वामी जी ! आपका भजन तो सचमुच मेरे मन का भजन है। इसे सुन कर मेरे मन के अन्दर आनन्द की लहरें तरङ्गित हो उठी हैं।'

स्वामी जी ने कहा –'बहिन ! भजन से संगीत की लहरी निकली है न - वह स्वयम् भगवान का रूप है। लेकिन भारत के लाखों – करोड़ों का भजन तो रोटी है। उनका संगीत रोजी है। रोजी-रोटी के चक्कर में भारत ने ऊँचे संगीत और भजन को लोगों ने भुला दिया है। बहिन ! उन्हें कहाँ फुर्सत है कि वे

दो घड़ी परम पिता परमात्मा को याद कर सकें । पेट कभी उनको हृदय की आवाज सुनने नहीं देता । जब कभी उनके मरुस्थलीय जीवन में आनन्द की बूँद टपक जाती है तो उसे जन्म-जन्म की प्यासी रेत तुरन्त अपने भीतर सोख लेती है ।'

'यह भजन आप किसे सुना रहे थे ?'

'स्वयं अपने लिये सुना रहा था बहिन! वही भजन और संगीत अमर होता है, जो अपने लिये होता है । बाहर कुछ नहीं है सिस्टर ! जो कुछ है मनुष्य के भीतर है । परन्तु भूखा-प्यासा और अभागों की तड़प से जलता व्यक्ति इसे क्या समझ सकता है ? मुझे अथाह प्रसन्नता हुई है यह देखकर कि तुम्हारे हृदय में प्रेम की वह पीड़ा है तो जीवन के स्वर्ण को तपाकर कुन्दन कर देती है !'

श्रीमती हेल को लगा कि सन्यासी जी सच कह रहे हैं । कहने लगी—'स्वामी जी ! आपके भजन से जो स्वर फूट रहा था, वह अमर है । मैं उसे सुनकर आनन्द और रस के उस सागर में डूब गई थी जिससे जीवन से दुख, व्यथा, निराशा, त्रास और कुण्ठा का सारा मैल, घुल जाता है । आज मुझमें एक नयी शक्ति जाग उठी है ।'

स्वामी जी ने कहा—'आज मैं अपने को समझने का प्रयत्न कर रहा हूँ ।'

दूसरे दिन श्रीमती हेल उन्हें धर्म-महासभा के कार्यालय में ले गई । स्वामी जी ने अपना परिचय-पत्र दिया । उन्हें प्रतिनिधि स्वीकार कर लिया गया । इतना ही नहीं, उन्हें अन्य प्राच्य प्रतिनिधियों के साथ ठहराया गया ।

एक ही दिन के सम्पर्क में स्वामी जी ने हजारों व्यक्तियों को अपना बना.लिया।

सोमवार के दिन विशाल कोलम्बस हॉल में महासभा का पहला सत्र शुरू हुआ। उस हॉल में एक अरब बीस करोड़ मनुष्यों के विश्वासों के प्रतिनिधियों का सागर उमड़ रहा था। रोमन कैथोलिक चर्च के सबसे बड़े धर्माचार्य कार्डिनल को सभापति बनाया गया था। उनके दाँये-बाँये आसीन थे-बंगाल के प्रतापचन्द्र, बम्बई के नगरकर, लंका के बौद्ध प्रतिनिधि धर्मपाल, श्रीमती एनीबीसेण्ट और थियासाफी के विशेष प्रतिनिधि।

स्वामी जी सबके बीच में बैठे थे मानों तारा-गणों के बीच में चन्द्रमा विराजमान हो! उनका ऊँचा व्यक्तित्व तेजवान मुख सुन्दर वक्ष, गठा हुआ शरीर, हजारों लोगों का ध्यान अपनी ओर आकर्षित कर रहा था। वे शीघ्र ही सबकी आँखों के तारे बन गए थे।

इतनी बड़ी सभा को देखकर स्वामी जी चकित रह गए थे। उनका यह पहला अवसर था जब वे उच्चकोटि के विद्वानों के सामने कुछ कहने वाले थे।

अनेक लोग जब अपनी वाणी छटका कर बैठे गए तो संचालक ने स्वामी जी का नाम पुकारा।

दोपहर बीत चुकी थी। स्वामी जी ने धुँधले सूर्य की ओर देखा और उठकर मंच पर पहुँचे। उनका मुख आग की तरह दमक रहा था। उनकी आँखों से सूर्य का प्रकाश झर रहा था। एक बार उन्होंने विहंगम रूप से विशाल श्रोतावर्ग की ओर निहारा। उनके होंठ हिले—मानो वाणी आग की लपट से

घिर गई हो। बोले—'अमेरिका निवासी बहिनो और भाइयो ! ..... '

अभी इतना ही कह पाए थे कि हजारों तालियाँ गड़गड़ा उठीं। लोग उछल पडे—आखिर यह नए सम्बोधन करने वाला व्यक्ति कौन है ? सारी धर्म-सभा मानो स्वामी जी स्वागत करने के लिये पागल हो उठी। लेकिन उनके निराले सम्बोधन से जो हर्षोत्साह का बम फूटा, उसने उन्हें बोलने नहीं दिया। सचमुच वह पहले व्यक्ति थे, जिन्होंने धर्म महासभा की औपचारिकता को ताख पर रख दिया—वह सुनने वालों को ऐसी भाषा सुनाना चाहते थे, जिसकी उन्हें वर्षों से प्रतीक्षा थी।

जब लोग चुप हुए, तो स्वामी जी ने संसार के सबसे पुराने धर्म—वैदिक की तरफ से अमेरिका के लोगों का अभिनन्दन किया। उन्होंने कहा कि संसार के सभी धर्मों का जनक हिन्दू धर्म है। हिन्दू धर्म ही एक केवल एक ऐसा धर्म है जिसमें सहिष्णुता की गङ्गा है, दया की यमुना है और समभाव की सरस्वती है।'

फिर एक श्लोक को सुनाकर उसका भावार्थ बताते हुए कहा—'जब संसार के अधिकांश लोग नंगे घूमते थे तो हमारे मुनियों ने ये शब्द कहे 'जैसे नदियाँ अलग-अलग स्रोतों से निकल कर समुद्र में मिल जाती हैं, उसी तरह हे प्रभो ! अलग-अलग रुचि के अनुसार तरह-तरह के टेढ़े-मेढ़े या सीधे रास्ते से जाने वाले लोग अन्त में तुझमें आकर मिल जाते हैं।'

इन शब्दों को सुनकर लोग गद्-गद् हो उठे। उन्हें लगा इतनी सुन्दर बात तो उन्हें आज तक किसी धर्म गुरु ने बताई ही नहीं।

स्वामी जी ने कहा—'हमारा भगवान कहता है, जो

कोई मेरी ओर आता है—चाहे किसी प्रकार से हो—मैं उसको कंठ से लगा लेता हूँ। लोग अलग-अलग मार्गों से चलकर अन्त में मेरे ही पास आते हैं।'

व्याख्यान की इस माला का एक-एक मोती अपनी मौलिकता के कारण सुनने वालों के हृदय में जड़ गया। जो दूसरे भारतीय प्रतिनिधि थे, वे किसी न किसी सम्प्रदाय या पन्थ से जुड़े हुए थे, पर स्वामी जी न किसी समाज के थे और न किसी सम्प्रदाय के—वह समग्र भारत के प्रवक्ता थे। उन्होंने धार्मिक सच्चाई-चक्र पर अपनी उङ्गली घुमाई थी।

उस दिन वह शाम तक भाषण देते रहे। लोग अपनी-अपनी कुर्सी पर जैसे चिपक कर उनके मुग्धकारी शब्द सुनते रहे उन्होंने अपने भाषण में भारत का ज्ञान-पिटारा खोला, वेदान्त के सच्चे जादू को समझाया यह बताया कि केवल वेदान्त-धर्म ही सार्वभौम है! शेप सभी धर्म किसी न किसी अथले अंचल से जुड़े हैं। वेदान्त का धर्म यदि समुद्र है तो अन्य धर्म बरसाती नदियों के समान है।

अन्त में उन्होंने कहा—'यदि कभी कोई सबके मतलब का धर्म होगा, तो वह किसी देश या काल की सीमा से बँधा हुआ नहीं होगा। वह उस असीम भगवान के समान असीम होगा। उसका उपदेश सूर्य, कृष्ण और ईसा के मानने वालों को नहला देगा। उसका उपदेश संतों और पापियों पर समान रूप से प्रकाश विकीर्ण करेगा वह धर्म न तो ब्राह्मण होगा, न बौद्ध, न ईसाई और इस्लामा वरन् इन सबकी धरती का अकेला बीज होगा। परन्तु जिसमें विकास का अनन्त आकाश होगा जो इतना उदार होगा कि जानवरों से लेकर मनुष्यों तक को अपने हृदय से लगा लेगा। वह मानवता को जानेगा, किसी

और को नहीं। वह धर्म ऐसा होगा जिसकी नीति में पीड़ा, असहिष्णुता और घृणा का स्थान नहीं होगा। वह हरेक नर-नारी में दिव्यता को स्वीकार करेगा। उसका सारा बल और सामर्थ्य मनुष्यता को अपनी सच्ची प्रकृति से सींचेगा। आप यदि ऐसे धर्म को मानना चाहते हैं तो उसे सामने रखिए—सारी दुनिया आपकी गुलाम बन जाएगी। उस समय न तो कोई ईसाई, बौद्ध बनना चाहेगा और न कोई हिन्दू, मुसलमान बनेगा क्योंकि उस धर्म में ये नाम है ही नहीं। उसमें तो केवल एक नाम होगा, एक धर्म होगा और वह होगा 'मानव धर्म ! पर हाँ, हरेक को चाहिए कि वह दूसरों के सार भाग को अपनी आत्मा में पिरोए—अपनी विशेषता की रक्षा करे–अपनी निजी वृद्धि के लिए सत्यमार्ग पर चले।'

दो क्षण शान्त रहने के बाद उन्होंने कहा, इस धर्म-सभा ने संसार को यह दिखा दिया है कि शुद्धता, पवित्रता, दया शीलता किसी धर्म या सम्प्रदाय की बपौती नहीं है। हर धर्म ने महान और उन्नत-चरित्र वाले स्त्री-पुरुषों को जन्म दिया है। इन प्रत्यक्ष प्रमाणों के बावजूद जो लोग ऐसा सपना देखते कि सारे धर्म नष्ट हो जायेंगे और केवल उन्हीं का धर्म जीवित रहेगा, तो वे घृणा के नहीं दया के पात्र हैं। क्योंकि उन्हें जो कुछ मालूम है वह कुछ नहीं के बराबर है।

'उन्हें यह बतला दिया जाना चाहिए कि सभी विरोधी के बावजूद,प्रत्येक सच्चे धर्म की पताका पर यह लिखा रहेगा–सहायता करो, लड़ो मत ! परभाव ग्रहण करो, न कि परभाव विनाश ! समन्वय और शान्ति स्थापित करो न कि मतभेद और कलह !'

स्वामी जी इतना कह कर बैठ गए। मगर सुनने वाले चाहते थे कि वे और बोलें– इसी प्रकार बोलते रहें।

उनके शान्ति सम्पन्न शब्दों ने सबको मोहित कर लिया था। सब लोग स्वामी जी के अपने बन गये थे।

और देखते-देखते स्वामी जी अमेरिका के लिए एक महत्वपूर्ण व्यक्ति हो गए।

अगले दिन से अमेरिका के समाचार-पत्रों ने उनकी प्रसंसा के गुण गाने शुरू कर दिए। नगर के अनुसार और सबसे अधिक प्रसारित अखबारों ने उन्हें 'मसीहा' और 'ऋषि' के रूप में लिखा। एक प्रसिद्ध समाचार पत्र ने छापा—'वे निःसन्देह धर्म महासभा में सर्वश्रेष्ठ व्यक्ति हैं।' और यह भी कि 'उनको सुनने के बाद हमें ऐसा लगता है। कि ऐसे ज्ञानी देश में मिशनरियों को भेजना कितना मूर्खता की बात है।

स्वामी जी का हृदय गद्-गद् हो उठा। वह जिस उद्देश्य से अमेरिका आये थे, उसे उन्होंने पूरा कर दिखाया।

भारत के अमर पूत की वाणी पर पाश्चात्य देश की शाही मुहर लग चुकी थी। अब कौन-सा ऐसा भारतवासी होगा जो उनके बारे में नहीं जानेगा। उस तपः पूत के बारे में नहीं जानेगा जिसने सोये हुए भारत को जगाया था—भारत के डूबे हुए धर्म को उठाया था और बताया था कि सारे जहाँ से मिट गये दुनियाँ को मिटाने वाले, लेकिन हम अभी जिन्दा हैं और तब तक जिन्दा रहेंगे जब तक हमारा 'मानव-धर्म' जीवित रहेगा!

स्वामी जी की सफलता के समाचार भारत के अखबारों में भी छापे गये। मद्रास से अल्मोड़ा तक और कलकत्ता से बम्बई तक भारतीय अखबारों के अंग्रेज मालिक धर्म-सभा के सर्वश्रेष्ठ व्यक्ति के संदेश को छापने के लिए आतुर हो उठे।

जब बराह नगर मठ में रामकृष्ण संघ के सन्यासियों को

पता चला कि उनके 'स्वामी' ने नये संसार को तूफान की तरह मथ डाला है, तो वे खुशी से उछल पड़े।

भारत में सब जगह 'विवेकानन्द' नाम गूंज उठा। कलकत्ता के नागरिकों ने अमेरिका की जनता को धन्यवाद देने के लिए 'टाउन हॉल' में एक सभा की।

और एक दिन पूर्व का अज्ञात सन्यासी उस दिन विश्व प्रसिद्ध होकर 'युग-पुरुष' बन गया। पर स्वामी जो भारत के पददलित लोगों के प्रति अपने कर्तव्य को नहीं भूल पाये।

एक दिन वह कुछ विचार कर रहे थे कि एक धनी आदमी उनके सामने आया। उसने अपना परिचय दिया और बोला—'आज स्वामी जी ! मेरा आतिथ्य स्वीकार करें।

स्वामी जी उसके साथ उसकी आलीशन कोठी में जा पहुँचे। उन्हें एक शानदार कमरे में ठहराया गया। स्वामी जी कमरे की ऐश्वर्यपूर्ण सज्जा को देख कर मुँह लटका कर बैठ गये। उनके मुख पर गहरे दुःख के बादल घिर आए। उन्हें आरामदेह गद्दे काँटों की सेज मालूम पड़ने लगे। वह कमरे के फर्श पर लेट गये और रो-रो कर कहने लगे 'माँ ! जब मेरी मातृ भूमि दरिद्रता के कीचड़ में डूबी हुई है तो मैं यह नामयश लेकर क्या करूँगा ? कौन भारत की जनता को उठायेगा ? कौन उन्हें दो वक्त रोटी देगा ? माँ ! मुझे बताओ, मैं कैसे उन नंगे भूखों सहायता कर सकता हूँ ?'

थोड़ी देर बाद घर का मालिक आ गया उसने स्वामी जी को धरती पर विलाप करते देखा तो समझ गया कि स्वामी जी उससे क्या चाहते हैं।

स्वामी जी को बिना बताये उसने भारत के लिये लाखों रुपयों का चैक भेजा। साथ की चिट्ठी में भारत सरकार को

लिखा—'इस धन से प्रिय भारतवासियों की सहायता की जाए। यदि इस धन में से भारत सरकार ने एक-एक पैसे का भी संकोच किया तो ईश्वर ऐसी सरकार को कभी क्षमा नहीं करेंगे।'

स्वामी जी को बातों बातों में जब उस धनी अमेरिकन व्यक्ति की उदारता का पता चला, तो उन्होंने उसे हृदय से लगा लिया। बोले—'आज भारत के बेटों को ऐसे ही महापुरुषों की जरूरत है।'

वह बड़े उत्साहित हुए। उन्होंने देश-भक्ति की आग से तड़प कर भारत में सन्देश भेजा—मेरे बच्चो! कमर कस लो। ईश्वर ने मुझे इसी के लिए बुलाया है। मेरी आशा तुम लोगों पर है—तुम, जो विनीत, निरभिमानी और विश्वासी हो। दुःखियों का दर्द समझो और ईश्वर से सहायता की प्रार्थना करो—वह अवश्य मिलेगी। हृदय का रक्त बहाते हुए मैं आधी पृथ्वी का चक्कर लगाकर इस अजनबी देश में सहायता माँगने आया हूँ। भगवान मेरी सहायता करेंगे। मैं इस देश में भूखा या जाड़े से भले ही मर जाऊँ, परन्तु युवको! मैं गरीबों, भूखों, पीड़ितों के लिए प्राण-पण से प्रयत्न को थाली के तौर पर तुम्हें अर्पण करता हूँ। जाओ, इसी क्षण जाओ, और पार्थ-सारथी के मन्दिर में जाकर सष्टांग प्रणाम करो और उनके सामने एक महा बलि दो, अपने सारे जीवन की बलि—जो उनतीस करोड़ लोगों के लिए, जो दिनों दिन अवनति के गडढे में जा रहे हैं। है। प्रभु की जय हो—हम अवश्य सफल होंगे। इस संग्राम में सैकड़ों पुनः उसकी जगह खड़े हो जायेंगे। जीवन तुच्छ है, मरण भी तुच्छ है। जय हो जगन्नियन्ता की! आगे कूच करो—प्रभु ही हमारे सेनानायक हैं। पीछे मत देखो। कौन गिरा, यह देखने को पीछे मत ताको—आगे बढ़ो। बढ़ते चले जाओ।'

स्वामी जी ऐश्वर्य में डूबकर भी अपने ध्येय को नहीं भूले। उनका ध्येय था भारतवासियों को बचाना, दरिद्रता की कीचड़ में डूबने से बचाना—सोये हुए भारत को जगाना। सारे संसार का ध्यान अपने कार्य की ओर खींचना, ताकि संसार के लोग उनकी प्यासी पुकार को समझने में सहायक हों उस समय तक जब तक कि सारे संसार के गरीबों और उत्पीड़ितों का कार्य न बन जाय।

छः

और स्वामी विवेकानन्द ने कहा था—'यह ब्रिटिश साम्राज्य दोषों का झुण्ड है, पर विचारों के प्रसार के लिए एक सबसे बड़ी मशीन हैं। मैं अपने विचारों को इस मशीन से बीच रख देना चाहता हूँ, बस, वे सारे संसार से फैल जायेंगे।

स्वामी जी ने अमेरिका में रहते हुए अपने भाषणों का अम्बार लगा दिया। जिसे देखो, वही भारतीय संस्कृति को जानने के लिए बेचैन नजर आता। परन्तु शीघ्र ही स्वामी जी को पता चल गया कि लेक्चर-ब्यूरो उनके साथ छल-कपट कर रहा है। इसलिये उन्होंने कम्पनियों को अपने लेक्चर देना बन्द कर दिया।

जाड़े के शुरू में वह अमेरिका के अनेक विद्यापीठों में गये। वहाँ उन्होंने तूफानी बातें बताई। भारतीय संस्कृति और धर्म का महानता का पिटारा खोला। इसके बाद वे न्यूयार्क वापस आ गये। वहाँ वे कोई रचनात्मक कार्य करना चाहते

थे। उसी समय उन्हें ब्रू कालीन एथीकल एसोशिएशन में व्याख्यान करने का निमन्त्रण मिला। स्वामी जी तो किसी ऐसे ही कार्य की खोज में थे ही। उन्होंने निमन्त्रण तुरन्त स्वीकार कर लिया।

इन व्याख्यानों में वांछित प्रभाव पैदा किया। शीघ्र ही बहुत से लोग उनके शिष्य बन गये। जिज्ञासुओं का एक दल तैयार हो गया। यह दल ईश्वर के प्रकाश के लिए स्वामी जी का मार्ग-दर्शन चाहता था।

स्वामी जी अपना सारा समय व्याख्यानों द्वारा शिक्षा देने में लगा देते थे। वे कुछ लोगों को राजयोग तथा ज्ञानयोग का अभ्यास कराने लगे। लोग कहने लगे कि स्वामी जी में ज्ञान और भक्ति का समावेश हैं— वे एक ही आधार में प्रबुद्ध सन्त हैं तो सच्चे भावुक योगी भी।

न्यूयार्क प्रवास में स्वामी जी के प्रमुख शिष्यों में श्रीमती ओली बुल, डा० अल्लन डे. कु० वाल्डो, प्रो० वाईमन, प्रो० राइट, डा० स्ट्रीट आदि और नामी-गिरामी बहुत से पादरी थे।

स्वामी जी ने कु० वाल्डो को भगिनी हरिदासी का नाम दिया। उसने राजयोग पर एक पुस्तक भी लिखवाई। स्वामी जी बोलते जाते और वह लिखती जाती थी। इस पुस्तक के कारण स्वामी जी का नाम अमेरिका समाज में ध्रुव तारे के समान अमर हो गया।

लगातार सार्वजनिक भाषणों ने स्वामी जी को थका दिया। अब वह शान्तिपूर्ण वातावरण में जाने के लिये आतुर हो उठे। अपने थके हुए स्नायुओं को विश्राम देना चाहते थे— अपने मस्तिष्क की मशीन का ओवरहालिन करना चाहते थे।

बस, एक रात एकान्त में बैठकर उन्होंने इस समस्या

का हल ढूढ़ना चाहा, तभी ईश्वर ने उनके सामने अपना एक बदा भेज दिया—और वह एक शिष्या थी उनकी । नाम था कुमारी डचर । उसने । निवेदन किया– 'स्वामी जी ! सेण्ट लारेंस नदी के किनारे एक हरा-भरा उद्यान है । वहाँ अपूर्व शान्ति है। आप मेरे साथ चलें । यह स्थान पठार पर अपनी सुन्दरता के साथ चमकता रहता है। जहाँ से उस नदी का चौड़ा फाँट और उसके बीच हजारों द्वीप बड़ा ही मनोहरी दृश्य अपनी छटा छिटकाते हैं । वहाँ एक कुटीर है जो निर्जन स्थान में बनी हुई है। उसके भीतर किसी भी प्रकार की आवाज नहीं जा सकती ।'

कुमारी डचर कहे जा रही थी और स्वामी जी जड़वत उसकी बात सुनते चले जा रहे थे । सहसा कुमारी डचर ने देखा कि स्वामी जी तो कहीं खो गये हैं तो बोली-स्वामी जी ! आपको क्या हो गया ? क्या वह स्थान ......'

सुनकर स्वामी जी मुस्कुरा उठे। बोले–'यह बात नहीं है डचर ! मैं यह सोच रहा था कि वह कुटीर क्या तुमने मेरे लिए बनवाई है ?'

'ऐसा ही समझ लीजिए स्वामी जी !'

स्वामी जी बोले—'मुझे ऐसे ही शिष्यों की जरूरत है।'

उसी शाम को स्वामी जी अपने कुछ शिष्यों के साथ सेण्ट लारेंस नदी के किनारे चले गये।

सचमुच वह स्थान बड़ा मनोहारी था। वृक्षों में झरमुट से झींगुरों की झनझन,पक्षियों की मधुर कलरब और मन्द समीरण के साथ पत्तों की सर-सर की ध्वनि छिटक रही थी । रात में चाँद के उठने पर वहाँ का दृश्य उसकी शीतल किरणों से आलोकित रहता । नीचे नदी में चाँद का छिपना और निकलना ऐसा लगता मानो-माँ की गोद में शिशु ताक-झाँक कर रहा है।

स्वामी जी ने इस मनमोहक स्थान पर सात [illegible] बिताए। उनके बारह शिष्यों ने स्वामी जी के उपदेशों से [illegible] का सच्चा मार्ग पाने का प्रयत्न किया। इन शिष्यों में कुमारी [illegible] टीलेड भी थी जो अन्तिम घड़ी तक स्वामी जी के उपदेशों के प्रति सच्ची जिज्ञासु बनी रही। स्वामी जी ने उसे भगिनी क्रिस्तनी का नाम दिया। फिर भारत में उसे उपदेश देने के लिए भेजा। उसने भगिनी निवेदिता के साथ भारतवासियों का बहुत कल्याण किया।

इस द्वीप पर रह कर स्वामी जी ने भारत का इतिहास, कुरेदा। भारत के दर्शन का परदा हटाया। आध्यात्मिक और लौकिक रस की गंगा बहायी। उस समय ऐसा लगता था मानो उनके स्वभाव का शाश्वत सत्य एक नहीं,हजारों रूपों में लोगों के हृदय में घर बना रहा है।

लोगों के आग्रह पर स्वामी ने इस द्वीप में सात सप्ताह बिताए। इस अवधि के बारे में स्वामी जी ने एक शिष्य से कहा 'यदि यह उनचास दिन मुझे न मिलते, तो शायद भारत-दर्शन का पवित्र द्वार लाखों वर्षों तक बन्द रहता। मैंने उस बन्द द्वार को सदैव के लिए खोल दिया है।'

वहाँ से जब वे इंगलैण्ड की ओर रवाना हुए तो उन्होंने देखा कि हजारों अमरीकी उनके बिछोह में आँसू बहा रहे हैं। सचमुच उन्होंने अमरीका वासियों को भारत के वेदान्त का ज्ञान दिया था। अपने प्रचंड अग्नि-शिखा के समान व्याख्यानों से लाखों मनुष्यों को सोते से उठाया था।

चलते समय अमरीकावासियों को उनके विषय में कहना पड़ा था–'ऐसे महापुरुष इस धरती पर शायद ही और कहीं हो।'

सचमुच स्वामी जी ने जनता के कल्याण के लिए अपने को पूरी तरह खपा दिया था।

इङ्गलैण्ड में स्वामी जी के मित्रों ने उनका हार्दिक स्वागत किया। उनमें कुमारी हेनरीटा मूलर भी थी। यह स्वामी जी से अमेरिका में मिल चुकी थी।

कुछ दिन तक विश्राम करने के बाद स्वामी जी ने चुपचाप अपना कार्य करना शुरू कर दिया। क्योंकि वह जानते थे कि अङ्गरेज उन्हें भारतीय आध्यात्म की बांसुरी बजाने नहीं देंगे—वह एक गुलाम देश के व्यक्ति जो हैं। परन्तु गुलाब की खुशबू कहीं एक स्थान पर ठहर सकती है ? शीघ्र ही उनकी कीर्ति फैलने लगी।

देखते देखते इङ्गलैण्ड के समाचार-पत्र उनकी प्रशंसा के गीत गाने लगे। अनेक नेताओं ने उन्हें अपने यहाँ आमंत्रित किया।

यह देखकर इङ्गलैण्ड की सरकार सतर्क हो गई। वह स्वामी जी को बन्दी बनाने का बहाना ढूंढ़ने लगी। पर स्वामी जी के व्याख्यान मानवता के रस में डूबे हुए होते थे। अतः अङ्गरेजों ने अपने हथियार ढीले कर दिए। अब स्वामी जी निडर होकर अंग्रेज समाज के श्रेष्ठ वर्गों में संचरण करने लगे। दोनों की धारणा बदल गई—स्वामी जी की भी और अंग्रेजों की भी ! पर इङ्गलैण्ड में स्वामी जी ने पाया कि अमेरिकियों के समान अंग्रेजों में उनके विचारों को संजोने की लालसा नहीं है। स्वामी जी समझ गए कि अङ्गरेज धर्म और आध्यात्म में भी मशीन ढूंढ़ते हैं ! फिर भी उन्हें परम संतोष था, क्योंकि उन्होंने बहुतों को अपना सच्चा मित्र बना लिया था।

लंदन में स्वामी जी की भेंट प्रो० मैक्समूलर से हुई—यह वही मैक्समूलर थे जो प्राच्यविद्या के महान विद्वान माने जाते थे और जिन्होंने भारतीय ग्रन्थों का स्वयम् रस पिया था और भारतीयों से भी रस को पीने के लिए कहा था। कालिदास

का 'अभिज्ञान शकुन्तलम' पढ़कर तो मैक्समूलर नाच उठे थे। उनके मुख से समय ये शब्द फूटे थे मैंने शेक्सपियर को भी पढ़ा है, पर जो बात कालिदास में है वह शेक्सपियर की एक रचना में भी नहीं।'

और उन्हीं मैक्समूलर से जब स्वामी जी आक्सफोर्ड यूनीवर्सिटी में मिले तो वह स्वामी जी के तेज को देखकर नत-मस्तक हो गए।

स्वामी जी ने उनसे कहा—'सुना था मैंने कि भारत को प्यार करने वाला एक ऋषि लन्दन में भी रहता है। आज उस आलोक देने वाले व्यक्तित्व का मैं दर्शन कर रहा हूँ. उस सत्तर वर्ष के ऋषि को जो रजत धवल केशों वाला है, शान्त और सौम्य चेहरे वाला है लेकिन इतनी लम्बी वय में भी बच्चे के समान स्निग्ध ललाट लिए मेरे सामने मौजूद हैं। मैं उसे आध्यात्म की खान कहूँ या भारत माँ का लाल''' ''!'

स्वामी जी के शब्द सुनकर मैक्समूलर का मुखमण्डल चमक उठा। उन्होंने स्वामी जी को हृदय से लगा लिया। फिर बोले—'स्वामी जी! आपके दर्शन कर, मैं कृतार्थ हुआ। जाने कब से आपसे मिलने के लिए आतुर था। आइए घर चलें।'

मैक्समूलर स्वामी जी को अपने घर ले आए। छोटा सा सुन्दर घर चारों ओर बढ़िया-सा बगीचा। किसी मुनि के आश्रम के समान पक्षियों का कलरव।

स्वामी जी का हृदय भर आया। उन्होंने गद्‌गद्‌ वाणी में कहा—मान्यवर! आप सचमुच ऋषि हैं।'

दो-चार बातों के बाद प्रो० मैक्समूलर ने कहा-'स्वामी जी! श्री रामकृष्ण के जीवन और उपदेशों पर एक वृहद ग्रन्थ लिखना चाहता हूँ।'

अवश्य लिखिए।' स्वामी जी ने सहर्ष कहा—मेरे पास गुरुजी से सम्बन्धित जो भी सामग्री उपलब्ध है, वह मैं आपको भारत पहुँचते ही भेज दूंगा।'

मैक्समूलर प्रसन्न हो गए।

स्वामी जी ने इच्छा प्रकट की कि मैं सम्पूर्ण यूरोप घूमना चाहता हूँ, अतः अब मुझे विदा दी जाय।

मैक्समूलर ने उस भव्य मूरत की आँखों में मोती सजा कर विदा किया।

दूसरे दिन स्वामी विवेकानन्द यूरोप के देशों का जायजा लेने के लिए निकल पड़े उनके साथ कुमारी हेनरीटा मूलर, कुमारी मार्गरेट नोबल, श्री स्टर्डी आदि प्रतिभाशाली व्यक्ति भी चले। ये लोग स्वामी जी के लिए अपना सब कुछ निछावर करने के लिए तैयार हो गए।

स्वामी जी ने स्विट्जरलैण्ड के हिम मण्डित पर्वत चोटियों के दर्शन किए। आल्पस पर्वत की तलहटी का आनन्द लिया। जर्मनी की झलक आँखों में भरी। फ्रान्स की चिकनी सड़कों को अपने चरण-कमलों से पवित्र किया—और पुनः लन्दन में लौट आए।

इस बार स्वामी जी ने लन्दन में दो माह गुजारे। इस बीच उन्होंने मैक्समूलर के अतिरिक्त एडवर्ड कारपेण्टर, केनन बिल्वर फोस आदि विख्यात लोगों से भेंट की। उन्होंने 'भारतीय माया पर व्याख्यान दिए। इन सब कार्यों ने स्वामी जी को थका दिया। वे श्रम से चूर-चूर हो गए।

एक रात्रि को उन्होंने अपने शिष्यों से कहा—अब मेरा पश्चिम का कार्य पूरा हो चुका। भारत माता मुझे पुकार रही है। अब मैं भारत माँ के चरणों में जाना चाहता हूँ। आप लोगों को मैंने हर प्रकार से दीक्षित कर दिया है। शारदानन्द

जी हैं, और लोग भी हैं, अब आप यहाँ मेरे शेष कार्य को पूरा करते रहेंगे। अगर मेरी जरूरत फिर होगी तो लन्दन की धरती पर फिर आ जाऊँगा। पर इस समय मैं भारत माता की आज्ञा को नहीं टाल सकता ?

जब वह भारत की ओर रवाना होने वाले थे, तो एक अंग्रेज मित्र ने उनसे पूछा—स्वामी, जी ! आपने ऐश्वर्य-शाली और शक्ति-सम्पन्न पश्चिम में चार वर्ष गुजारे हैं। यहाँ से अनुभवों का भव्य बंडल लेकर आप जा रहे हैं। आपको अब अपनी मातृभूमि कैसी लगेगी ?

स्वामी जी ने उत्तर दिया—'मित्र ! बालक दिन भर इधर-उधर खेलता है लेकिन दिन छिपने से पहले माँ की गोद की ओर ही दौड़ता है। वह दिन भर के खेलों और क्रियाकलापों को माँ के आंचल में ले जाकर भरना चाहता है। इस तरफ आने से पहले मैं माँ भारत को प्यार करता था। पर अब तो भारत का धूलि-कण मेरे लिए परम पवित्र हो गया है- अब वह एक पवित्र भूमि है—एक तीर्थ है !'

इतना कह कर स्वामी जी के चंचल पाँव डोवरी की ओर उठ गए। वहाँ से वह कैले तथा माउण्ट सेनिस होकर मिलान गए। रोम जाने के लिए जब उन्होंने फ्लोरेन्स छोड़ा, तो उनकी आँखों में आँसू और साँसों में भावों के पहाड़ आ खड़े हुए, क्योंकि रोम देखने के लिए वे जाने कब से तड़प रहे थे।

जब रोम पहुँचे तो उन्होंने वहाँ के ऐतिहासिक स्थलों के दर्शन किये। वहाँ की विद्या, कला तथा धर्म के पीठों को देख कर उनके मुख से अनायास ही निकाल—'कौन कहता है कि रोम भारतीय कला और संस्कृति का ऋणी नहीं है ?'

एक सप्ताह बाद जब स्वामी जी ने रोम छोड़ा तो वह

जरा भी उदास नहीं हुए। उनके मन में भारत माँ के दर्शनों की ललक अत्यन्त तीव्र' गति से उठ रही थी।

कई दिन की यात्रा के बाद जब उनके चरण लंका की धरती में पड़े तो वे भाव-विह्वल हो उठे। उदीयमान अंशुमाली के लाल किरण-घोड़ों को देख कर उनके मुख से निकला—'आह! मैं भारत माँ के चरण छूने के लिए बढ़ता जा रहा हूँ।'

जब वे कोलम्बो पहुँचे तो दर्शकों की भीड़ उमड़ पड़ी। लोगों ने जयजयकार के नारों से आकाश को गुँजा दिया। उनके चरणों को छूने के लिए लोग टूट पड़े। एक के ऊपर एक चढ़ा जा रहा था—पर किसी को अपने तन की सुधि नहीं थी। सुधि थी तो एक-किसी प्रकार स्वामी जी के चरण छूने को मिल जायें, ताकि एक तीर्थ का पुण्य-लाभ उन्हें मिल सके।

देखते-देखते एक विशाल जुलूस पताकायें लेकर स्वामी जी को गोद में उठाए चलने लगा। विश्व जानता है कि इतना बड़ा स्वागत संसार के किसी भी महान व्यक्ति का नहीं किया गया था!

लोगों ने स्वामी जी के मार्ग में फूलों की फुहार छिटका दी। धनी और निर्धन सभी ने स्वामी के सामने अपने कलेजे निकाल कर रख दिए। सबकी आँखों के तारे विवेकानन्द उस जुलूस के बीच में ऐसे लग रहे थे, जैसे कोई महान विजेता विजय को वरण करके लौट रहा हो। स्त्रियों ने श्रद्धा-सुमन के गलीचे बिछा दिए। पर स्वामी जी भौतिक साम्राज्य के विजेता नहीं थे, वे तो पूर्व और पश्चिम दोनों को जीतने वाले थे।

लंका में कई सभाओं में उन्हें बोलना पड़ा। उनका भरपूर उत्साह के साथ स्वागत होता रहा—ज्यों-ज्यों वे आगे बढ़ते गए। इस द्वीप में स्वामी जी में दस दिन बिताए। इन दस दिनों में लोगों ने विजय-यात्रायें निकालीं, बाजे बजाए, तोपें

छोड़ीं, आतिशबाजियाँ चमकायीं। इतना ही नहीं, राजाओं ने उनकी गाड़ी खींची लोगों में उनके प्रति सम्मान और आदर व्यक्त करने के लिए होड़ लग गई।

स्वामी जी को एक बात याद हो आई, पाँच वर्ष में कितना अन्तर हो गया। तब मैं इन्हीं स्थानों से हाथ में भिक्षा पात्र लेकर गुजरा था। उस समय मैं एक अज्ञात परिव्राजक था— थकावट से चूर, पैरों में छालों का जाल सजाए! दुनिया कितनी अनजान हैं? ईश्वर इन अनजान लोगों को बुद्धि दे।

और एक दिन भारत के समुद्र-द्वार मद्रास में उन्होंने अपने चरण रख दिये।

उस दिन नगर में उनके सम्मान के लिए सत्रह स्वागत-द्वार बनाए गए थे। चौबीस अभिनन्दन-पत्र समर्पित किए गए। नगर का समूचा जीवन उनके आने की खबर सुनकर रुक गया।

मद्रास में स्वामीजी की पवित्र वाणी से निकला—'हर आदमी की तरह हर राष्ट्र का एक ध्येय होता है, जो उसका केन्द्र होता है। वहीं उसकी जीती-जागती स्वर-लहरी होती है। उसके साथ अन्य लहरियाँ मिल कर रस का निर्माण करती हैं। यदि कोई राष्ट्र इस जीवन-लहरी को दूर करने का प्रयास करता है, तो वव राष्ट्र मर जाता है। भारत में धार्मिक जीवन एक चेतना है, एक प्राण है, एक जादू है और है एक केन्द्र-बिन्दु, जिसमें समूचा राष्ट्रीय जीवन संगीत-स्वर बनकर समाया हुआ है।

'आज भारत में समाज-सुधार की शिक्षा की जरूरत है। मगर वह शिक्षा तभी कारगर हो सकती है, जब भारत के बच्चे-बच्चे को यह दिखाया जाए कि वह जीवन को कितना पवित्र बना सकता है। उसी प्रकार राजनीति का प्रचार तभी हो सकता है ज़ब यह दिखाया जाए कि राष्ट्र जिस सच्चाई को

पाना चाहता है, उसमें कितनी वृद्धि हो सकेगी। इसलिए भारत के लालों को कुछ सिखाओ—केवल यही सिखा दो कि व्यक्ति क्या है ? ईश्वर क्या है ? आध्यात्मिक विचारों की क्यों जरूरत है ? इन तीन प्रश्नों के उत्तरों से सरावार कर दो। याद रखो भाइयो ! जब भारत का बच्चा-बच्चा सच्चे धर्म की गंगा में नहा लेगा, तो सारा संसार यहीं आ उमडेगा !

'पहला काम तो यह है कि हमारे देश के ग्रन्थों में जो अद्भुत सत्य छिपे हुए हैं उन्हें पुस्तकों, मठों, अरण्यों और मन्दिरों से निकाल कर सारे देश के विशाल आँगन में बिखेर दो। जिससे सच्चाई उत्तर से दक्षिण और पूर्व से पश्चिम तक दावानल के समान देश भर में फैल कर धधक उठे !

'सुनो ! मेरे देश के बहिन-भाइयो ! हरेक बालक बिना किसी जाति या जन्म के विचार के एक अनन्त आत्मा है। शक्ति या आशक्ति के पीछे एक भावना है बिना सीखें और सुने ईश्वर का एक अंश है, बिना ऊँच और नीच के अनन्त सम्भावना है। आओ, हम प्रत्येक जीव के सामने प्रतिज्ञा करें-उठो, जागो, उठो आगे बढ़ो ! उस समय तक मत रुको, जय तक तुम अपनी मंज़िल तक न पहुँच जाओ। कोई भी वास्तव में कमजोर नहीं है। यह आत्मा बहुत बलशाली है। खड़े हो जाओ और अपने कन्धों को झटक दो। अपने भीतर का मैल धोकर फेंक दो, तुम पवित्र हो जाओगे।

हम आदमी को आदमी बनाने वाले धर्म का डंका पीटते हैं। हम मनुष्य का सही निर्माण करने वाले सिद्धान्तों को चाहते हैं। जो भी तुम्हें कमजोर बनाता है उससे दूर हट जाओ। सत्य ही जीवन है और मजे की बात यह है कि सत्य ही सबसे सरल हुआ करता है। झूठ से बढ़कर कठिन कुछ नहीं है। फिर कठिन की ओर क्यों दौड़ते हो ?'

सात

स्वामी जी भारत के जन-जन को अपना सन्देश देते। अपनी पवित्र वाणी से लोगों के मन बन्द द्वार खोलते। पर वह यह बिल्कुल नहीं भूलते कि भारत के लाखों-करोड़ों लोग पतन और घोर जड़ता के अंधेरे कुँए में ढकेल दिए गए हैं। उन्हें उबारने की जरूरत है। उन्हें सही मार्ग पर लाने की जरूरत है।

तब वह लोगों से कहते 'हम ही अपने सारे पतन के लिए उत्तरदायी हैं। हमारे सामंतवादी बूढ़े, देश की जनता को अपने पैरों तले बुरी तरह रौंद गए हैं, बुरी तरह कुचल गए हैं। विदेशी और भारतीय राजाओं के अत्याचार सहते-सहते यहाँ के गरीब भूल गये हैं कि वे भी मनुष्य हैं। उन्हें सदियों से लकड़हारा या भिश्ती बने रहने के लिए बाध्य किया गया है। इसलिए मेरे भावी सुधार को, मेरे देश-भक्तो! तुम कुछ अनुभव करो, तुम हृदयवान बनो। क्या कभी तुम सोचते हो कि देव और ऋषियों की करोड़ों सन्तानें आज पशु के समान हो गई है! क्या तुम अनुभव करते हो कि लाखों आदमी दरिद्रता से भी नीचे का जीवन बिता रहे हैं? क्या तुम सोचते हो कि अज्ञान के काले बादलों ने सारे भारत को ढंक लिया है? क्या तुम यह सब सोच कर द्रवित हो जाते हो! क्या इस विचार ने तुम्हारी नींद को गायब कर दिया है?... क्या तुम अपने नाम, यश, स्त्री, बच्चों, यहाँ तक कि अपने शरीर की भी सुध छोड़ बैठे हो? यदि इन सवालों में से एक सवाल के जाल के बीच तुम आ गये हो, तो समझलो तुमने देश-भक्त बनने की पहली सीढ़ी पर पाँव रख दिए हैं। तुम व्यर्थ की बातों में अपनी शक्ति का क्षय मत करो। लोगों को बुरा-भला न कह कर अपने कर्त्तव्य का पालन करो।

तुम्हरा कर्त्तव्य निश्चित है। उसे समझो और स्वयम जागकर लोगों को जगाओ। क्या तुमने अपने भाइयों को जीवन मृत्यु के पालने से नीचे उतार कर कोई कर्त्तव्य-पथ ठीक किया है ? क्या उनके दुःखों को कम करने के लिए किन्हीं शब्दों को खोजा है ? यदि हाँ, तो याद रखो कि यदि सारी दुनिया हाथ में नंगी तलवार लेकर भी तुम्हारे रास्ते में बाधा डालने के लिए खड़ी हो जाय, तो भी तुम रुक नहीं सकोगे।

याद कर लो, यदि हमारे मन से सारे व्यर्थ के देवता भी लुप्त हो जायें, तो भी हमारा कुछ नहीं बिगड़ेगा। हमारी जाति ही ऐसा देवता है, जो जाग रहा है। उसके हाथ बहुत बड़े हैं और सब जगह फैले हुए हैं। उसके पैर और नेत्र सभी जगह हैं। वह सब में समाया हुआ है और उसमें सब समाये हुए हैं। दूसरे सब देवता तो सोये हैं। उनके पीछे जाने से कोई लाभ न होगा। जब हम हजारों-लाखों गरीब देवताओं की पूजा नहीं कर पाते, तो झूठी उपासना करने से क्या लाभ ? सबसे पहली विराट की पूजा है। ये मनुष्य और ये जीव-जन्तु—ये ही हमारे देवता हैं और यदि किसी देवता की हमें सबसे पहले उपासना करनी चाहिए, तो वह है हमारा अपना देशवासी।'

बंगाल पीछे नहीं रहा। अपने प्रिय पुत्र को सम्मान देने के लिए उसने भी आँखें बिछा दी।

स्वामी जी जैसे ही कलकत्ता पहुँचे वैसे ही शत-शत लोगों ने श्रद्धा का समुद्र स्वामी जी के चरणों में लाकर उड़ेल दिया। उनके विचारों को सुनने के लिये खाना-पीना सब कुछ छोड़ दिया।

दिन के समय स्वामी जी वाराह नगर में गोपाल दास 'सलिल' के यहाँ रहते और रात में मठ में चले जाते। मठ में

जो सभा जुड़ती उसमें दरिद्र से लेकर बड़े-बड़े महाराजा, सन्यासी, प्रख्यात पंडित, गणमान्य नागरिक, यूरोपियन और कालेज के विद्यार्थी तक होते। उन सबको स्वामी जी इतसे सीधे-सादे ढङ्ग से समझाते कि लोग अपनी भूलों पर पाश्चाताप करते। प्रश्न करने वाले स्वामी जी की ज्ञान-गंगा में स्नान करके अपने को पवित्र करते शास्त्रों की सुन्दर व्याख्या उनको चमत्कृत कर देती। यहाँ तक कि दर्शन शास्त्र के बड़े-बड़े आचार्य और विश्व विद्यालयों के प्राध्यापक भी उनकी प्रतिभा को देखकर आश्चर्य से मुग्ध हो जाते। पर स्वामी जी का हृदय तो सबके साथ था। वे सभी से बातें करते—कभी थकते ही नहीं थे।

स्वामी जी के मन में तो एक दीपक जल रहा था—ऐसा दीपक जिसकी ज्योति से वह तरुण के मन में उत्साह की प्रेरणा, धर्म की प्रेरणा और प्यार की प्रेरणा जलाना चाहते थे जो अपना जीवन संसार की भलाई के लिए निछावर कर संसार को कुन्दन बना दें।

जब स्वामी जी मूड में होते तो शिष्यों से कहते, 'बच्चो! शरीर दुर्बल नहीं होता, लोग अपनी गलती से उसे दुर्बल बना लेते हैं। आज भारत में रहकर तुम कमजोर क्यों हो रहे हो? तुम अपने को ताकतवर बनाओ। भारत की बच्चियो को बाल-विवाह के कीचड़ से बाहर निकालो। लोगों में आज आतम-विश्वास और राष्ट्रीय सस्कृति की ज्योति जलाने की जरूरत है।

इन शब्दों में वे प्यार का घट उड़ेल देते, सहृदयता की घनेरी धूप में सबको स्निग्ध कर देते।

घूमते-घूमते जब वह एक दिन आलम बाजार के मठ में आए, तो उन्हें पुराने दिनों की स्मृतियाँ जाग उठीं। उन

दिनों वे अपने गुरु के साथ होते। एक बार श्रीरामकृष्ण परम हंस की बाँह से व्रण में हो गया। मवाद भी पड़ गया। गुरु जी ने शिष्यों से कहा—'इस व्रण में तो कीटों ने अपने घर बना लिये हैं। अगर मैं उनको खींचकर बाहर कर दूंगा तो वे कष्ट का अनुभव करेंगे।

शिष्यों को समझ में कुछ नहीं आ रहा था। उन शिष्यों में एक शिष्य नरेन भी था—आज के स्वामी विवेकानन्द और कल के अमर पुरुष !

नरेन ने भी सुना। उससे न रहा गया। उसने गुरुजी की बाँह से मवाद निकालना शुरू कर दिया। व्रण धोकर जब औषधि लगा दी तो गुरूजी को ठण्डक सी लगने लगी।

सहसा उनका ध्यान मिट्टी के एक पात्र की ओर गया। अरे ! यह क्या ? नरेन ने तो दिए में मवाद एकत्र कर रखा है। पूछा गुरुजी ने—'अरे ! इसका क्या करोगे नरेन ?

'इसे गुरु जी का प्रसाद समझकर पी लूंगा।'

नरेन का उत्तर सुनकर श्री रामकृष्ण का हृदय गद्‌गद् हो उठा। उनके मुख से निकला—तू मेरा परम शिष्य है। प्राणों के समान प्यारा है।'

और जब स्मृति-पृष्ठ खुले तो खुलते ही चले गये।

तब वे दिन भी याद ही आये जब उन्होने गुरु-भाइयों की धारणा जीवन के व्यक्तिगत झुर-मुट से निकल कर सब में जीवन में बदली थी। जनता की सेवा करना पहला और अन्तिम ध्येय बतलाया था।

अभी तक सन्यासी अपनी मुक्ति की गंगा में ही गोते लगाते थे। स्वामी जी ने कहा—सन्यासी को ऐसी गंगा बहानी चाहिए, जिसमें छोटे-बड़े सभी नहा सकें। ध्यान और तपस्या की धारा द्वारा सभी जीवों को लाभ पहुँचा सके। परमात्मा

किसी एक की नहीं है–वह सबकी है उस पर किसी एक की मोहर लग ही कैसे सकती है ?'

जो सन्यासी श्री रामकृष्ण के महान संदेश में शंका का ढिंढोरा पीटते, उन्हें स्वामी जी को धिक्कार की डोरी में बाँध देते थे। वह कहते थे—हर चीज युग की माँग के अनुसार बनाई जाती है। आज युग की माँग है कि नया प्रकाश दूसरों तक पहुँचाया जाय। एक ऐसा उदाहरण सबके सामने रखा जाए जिसमें त्याग और सेवा का मिला-जुला जीवन हो—कठोर अनुशासन ध्यान और अध्ययन का आत्म-समर्पण लक्ष्य हो।'

स्वामी जी ने शिष्यों तथा गुरु-भाइयों के हृदय में बिजली की लहर दौड़ा दी। उस बिजली का प्रभाव इतना अधिक हुआ कि सभी ने स्वामी जी की वाणी को श्री रामकृष्ण की वाणी समझकर सर झुका दिए। उनके निर्देश पर कुछ भी करने को कमर कस ली।

स्वामी रामकृष्ण जी ने बारह वर्षों से मठ में ही रहकर अपने शरीर को तपा डाला था। स्वामीजी की आज्ञा सर पर लेकर वह दक्षिण भारत में वेदान्त की सरस्वती बहाने के लिए निकल पड़े। स्वामी शारदानन्द और अभेदानन्द ने पश्चिम की दौड़ लगाई। स्वामी अखण्डानन्द मुर्शिदाबाद जिले के गाँवों की भूखी आत्मा को बचाने के लिए दौड़ पड़े। सारे भारत में एक आध्यात्म की लहर-सी बिछ गई।

तरुणों और तरुणियों का एक दल भारत या भारत से बाहर जाने के लिए तड़प उठा। पतित लोगों को जीवन-संग्राम में लड़ने के लिए, उन्हें अपने पैरों पर खड़ा करने के लिए किशोरों का दल उमड़ पड़ा। फिर देखते-देखते विभिन्न मठ, सेवा-आश्रम और गुरुओं के संघ मानवता की सेवा के लिए आगे आने लगे।

उसी समय स्वामी जी ने सबकी राय से एक अटूट संघ का गठन किया, जिसका नाम रख गया 'रामकृष्ण मिशन एसोशिएसन !' इस मिशन का कर्तव्य भी निर्धारित कर दिया गया–लोगों को सच्चे जीवन की शिक्षा देना, कला और उद्योगों की शाखाओं को देश के कोने-कोने में फैलाना और श्रीरामकृष्ण के वेदान्त को जन-जन के हृदय में भरना। संघ के अनेक प्रशिक्षित सदस्यों को भारत से बाहर वेदान्त की फुहार छोड़ने का कार्य भी तय कर दिया गया।

इस कार्य से निपट कर स्वामी ने अपनी आँख उत्तर भारत की ओर उठाई—मानो एक साहसी, उत्साही और आध्यात्म का जीवित तारा चमक उठा हो। तब उनके पैरों के नीचे पत्थरों का अल्मोड़ा और मखमली पंजाब आने लगा। उस समय उनकी वाणी अलवर अजमेर, राजपूतना, कश्मीर सभी नगरों को सुनने को मिली। राजा से रङ्क तक उनके सम्मान को टूट पड़े। राजाओं के सामने दरिद्रों से और दरिद्रों के सामने राजाओं से वह जिस खुले दिल से मिलते, वह देखते ही बनता। वे सभी के सामने यही कहते—भारत माँ पर रोटी नहीं है, उसे रोटी दो। भारत माँ पर कपड़ा नहीं है,उसे कपड़ा दो। ऐ अमीरो ! तुम्हारे पास जो कुछ है, वह तुम्हें पूर्वजों से विरासत में मिला है। उसमें तुम्हारा कुछ नहीं है। उसे बाँटकर खाओ। फिर देखो, उस खाने में तुम्हें कितना आनन्द आएगा !'

राजा और रङ्क सभी की आँखों में आश्चर्य के आँसू छलक उठते—'कैसा है यह सन्यासी ! इसने तो ईश्वर की माला में समाज की बुराइयों को दूर करने के मनके पिरो दिए हैं। सचमुच यह भारत माँ का प्यारा लाल है !'

और इसमें झूठ भी कुछ नहीं था। देश-प्रेम की इतनी

बड़ी गठरी अपने साफे में बाँध कर आज तक कोई व्यक्ति नहीं चला। जब स्वामी जी देश-प्रेम के लिये आँसू बहाते तो नदियाँ और समुद्र रो उठते, जब स्वामी जी भारत की गरीबी को दूर करने के लिये सेठों को उद्‌बोधित करते तो सूर्य और चन्द्रमा टूट-टूट पड़ते ! वह कहते—मेरे देश-वासियो ! भारत की संस्कृति में ऐसी ज्वाला है जिसकी आँच के सामने अतीत और वर्तमान सभी ने बैठ कर हाथ सेके हैं।'

स्वामी जी अपनी इस बात को एक बार, दो बार और लाखों बार दोहराते। वह उस समय तक दोहराते रहते, जब तक कि सेठों का हृदय भारत के नाम से स्पंदित न होने लगता।

स्वामी जी ने कहा—'मेरे देश के लोगों ! भारत की राष्ट्रीयता को पुराने गौरव-पर्वत पर खड़ा करके दिखाना है, भले ही आगे बढ़ने की गति में बहुत सी नई-नई बातों को अपनाना पडे। यदि हम भारत माँ की आत्मा में झाँक कर देखना चाहते हैं, यदि हम राष्ट्र की प्रतिभा की खातिर सच्चे होना चाहते हैं, तो हमें अतीत के इस अमृत-स्रोत का जल अवश्य पीना पड़ेगा। हमारे पूर्वजों ने संस्कृति के जो झरने बहाए हैं, उन्हें सूखने मत दो। उन्हीं में स्नान करने से कल्याण होगा, न कि पश्चिम के बूंद बूंद रिसने वाले पोखरों का जल पीने से। ये अन्ध विश्वास और लोकाचार ऊपर से जमने वाली काई हैं। इसे अपने मजबूत हाथों से हटा कर दूर फेंक दो। स्वच्छ जल देखकर तुम्हारा मन स्वतः ही पान कर के लिए ललक उठेगा। व्यक्ति चरित्र और गुणों के ताने-बाने पर खड़ा है—इसे मत भूलो ! व्यक्ति की ताकत ही समूचे राष्ट्र की ताकत है। इसलिए समुचे राष्ट्र का भला चाहने वालो ! चरित्र निर्माण के सागर में बहा दो अपने को। भक्ति और आत्म सम्मान को बहू

बना कर मन के घर में ले आओ। त्याग और दुनिया तुम्हारा शिष्यत्व फिर स्वीकार करने लगे जायेगी ...।'

उत्तर भारत की यात्रा पूरी कर स्वामीजी अमरनाथ की यात्रा पर निकल पड़े। केवल भगिनी निवेदिता को साथ चलने की अनुमति मिली।

सावन का महीना आया और पूनों की रात। स्वामीजी अमरनाथ की पवित्र गुफा में आ पहुँचे हिम शिव को देखकर स्वामी जी ने आँखें मूंद लीं और कुछ देर के लिए तन-मन की सुधि खो बैठे।

बाहर आने पर लोगों से उन्होंने कहा—'आज मैंने उस शिव के दर्शन किए हैं लो शाश्वत हैं,जो ज्ञानी और परम योगेश्वर है। उसे हम अक्षर कहते हैं। हमारे पूर्वजों ने इसी शिव में विराट संसार के दर्शन किए थे। यह शिव और कुछ नहीं, हमारे ज्ञान का भंडार है। आओ, आज इस भंडार में से कुछ हम भी ले लें। हमारा जीवन सफल हो जायेगा। यह दुनिया से परे है लेकिन सारी दुनिया इसी में समाई हुई है।'

स्वामी जी के शब्द सुन कर लोग चकित रह गये। उन्हें लगा कि शिव स्वयम् प्रकट होकर अपने दर्शन दे रहे हैं।

अमरनाथ की यात्रा के पश्चात स्वामी जी को लगा, जैसे माँ काली उन्हें पुकार रही है! वह माँ काली का दर्शन करने के लिये छटपटा उठे। वह मार्ग में ही एक पत्थर पर बैठ गए और मन ही मन कुछ गुनगुनाने लगे। उनकी आँखें अपने आप बन्द हो गई और वह शून्य में खो गए। तभी उनके सामने एक स्त्री आकर खड़ी हो गई। उनका रूप-रङ्ग माँ काली के समान था। दायें हाथ में त्रिशूल लिए हुए थी। पर ठण्ड से उसका शरीर थर-थर काँप रहा था।

स्वामी जी ने आँख खोलकर देखा तो उन्हें लगा कि सचमुच की काली माँ उनके सामने आ खड़ी हुई हैं।

प्रणाम करने के बाद स्वामी जी ने अपना अधोवस्त्र उस स्त्री को ओढ़ा दिया और स्वयं बिना वस्त्र के बैठे रहे।

शिष्यों तथा भक्तों ने स्वामी जी को इस हालत में देखा तो तुरन्त एक रेशमी चादर लाकर उनको ओढ़ाई।

जब उन्हें अपने शरीर का बोध आया तो वे मुस्कुरा उठे।

दूसरे दिन वे अचानक चुपचाप अकेले ही क्षीर-भवानी चले गये और वहाँ कठोर तपस्या में डूब गये।

ठीक दो माह बाद जब वे अपने शिष्यों के पास लौटे तो उन्होंने स्वामी जी को पूरी तरह से बदला हुआ पाया। स्वामी जी के मन से कार्यकर्ता तथा उपदेष्टा के भाग अचानक गायब हो गये थे। अब वे केवल सन्यासी थे—शुद्ध सन्यास के रंग में रंगे हुए।

उन्होंने अपने शिष्यों से कहा—'प्रकृति ने इस भारत भूमि को मनुष्य जीवन की सारी आवश्यक सामग्रियों से परिपूर्ण बनाया है। इसीलिये यहाँ के निवासी दूसरे लोक की चिंता के लिए अपने आप कदम बढ़ा देते हैं। यह देश विचार-प्रधान है। दूसरे देशों में जीवन-संग्राम बहुत भीषण है। यही कारण है कि उन देशों में दिन प्रतिदिन के व्यावहारिक जीवन की समस्यायें उलझी हुई हैं। उन्हें सुलझाने में ही उन लोगों का सारा समय खत्म हो जाता है। पर भारत में ऐसी दशा नहीं है। यहाँ जीवन की आकस्मिक घटनायें नहीं हैं। जगत के महत्वपूर्ण तत्वों की छानबीन हम हजारों वर्ष पूर्व कर चुके हैं। भगवान श्री कृष्ण ने गीता द्वारा हमें कर्म का सन्देश दिया है। आचाय कौटिल्य ने कहा है कि आन्वीक्षिकी विद्या सब विद्याओं का दीपक है, सब कर्मो को करने के लिये साधन मार्ग है और

सब धर्मों का आश्रय है। विचार के लिए जितनी स्वतन्त्रता इस देश में है, वैसी कहीं भी प्राप्त नहीं हुई है। भारत का दर्शन अपने पैरों पर खड़ा है। यहाँ दर्शन की जितनी लोक-प्रियता है उतनी किसी देश में नहीं है। पाश्चात्य देशों में मैंने देखा है कि दर्शन विद्वानों के विनोद का साधन है। पर भारत में दर्शन और धर्म का, भारतीय जीवन और तत्त्व-ज्ञान का गहरा सम्बन्ध है। भारत का दर्शन जनता की शान्ति के लिए है, क्लेशमय संसार से निवृत्ति के लिए है, इसलिए आज भी वह जीवित है। हमने दुनिया को बताया है, जैसा बिचार वैसा आचार। बिना आचार के अच्छे विचार नहीं बनते और बिना अच्छे विचारों के ईश्वर के दर्शन नहीं होते हैं।

'शिष्यो! मैं जो कुछ कह रहा हूँ उस पर विचार करो, उस पर चलो! अब तो मेरी सारी देश-भक्ति तुम में समा गई है, मां काली में समा गई है। सब कुछ चला गया है। अब तो केवल माँ ही माँ हैं!'

अपनी बात समाप्त कर स्वामी जी अपने पुराने मठ में आ गए। स्वास्थ्य गिरने के बावजूद उन्होंने अपना पुराना व्यस्त जीवन शुरू कर दिया।

अब वे शिष्यों को सन्यास जीवन का कर्त्तव्य समझाने लगे। उनका अधिकांश समय धार्मिक चर्चा में ही निकल जाता। उन्हें खान-पान की सुधि नहीं रहती।

एक दिन स्वामी जी ने शिष्यों से कहा—संसार का इतिहास ऐसे इने-गिने लोगों का इतिहास है, जिनका अपने ऊपर विश्वास था। वह विश्वास भीतर के 'राम' को प्रकट कर देता है। मनुष्य तभी सफलता की सीढ़ी पर चढ़ता है जब वह अनन्त शक्ति को पाने के लिए आगे बढ़ता चला जाता है। जैसे ही व्यक्ति अपने आप में विश्वास गँवा बैठता है, उसकी

मृत्यु आ जाती है। पहले आप अपने में विश्वास करो और तब ईश्वर में। मुट्ठी भर आत्म-विश्वासी लोग इस संसार को हिला सकते हैं। याद रखो, कभी इस भारत माँ के एक मुट्ठी भर लालों ने ही दुनिया को हिला दिया था। मनुष्य को केवल दूसरों की मुक्ति के लिए प्रयत्न करना चाहिए और यदि दूसरों के लिए नरक में भी जाना पड़ जाय तो स्वर्ग को पाने की अपेक्षा नर्क कहीं अधिक श्रेष्ठ समझना चाहिए।'

शारदानन्द जी को धर्म-संघ के कार्य को आगे बढ़ाने के लिए अमेरिका से बुला लिया गया। उनके सहयोग से स्वामी जी ने 'सफर-मैंनों का एक शक्ति-शाली दल खड़ा किया। फिर उसे समझाते हुए कहा—'भारत के जीवन को बनाना तुम्हारे हाथ में है। सारे संसार में वेदों का सन्देश फैलाना तुम्हारे कंधों पर है। पूर्व और पश्चिम में प्रेम और एकता का यह सूत्र फैलाना तुम्हारे हाथ में है। यह सब इसलिये कि भारत का आदर्श युगों तक जीवित रहे।'

इतना कह कर स्वामी जी चुप हो गये।

आठ

स्वामी जी ने दूसरी बार पश्चिम की धरती पर अपने चरण रखे। इस बार वे अपने साथ भगिनी निवेदिता और तुरीयानन्द को ले गये। मार्ग में उन्होंने अपने दोनों प्रिय शिष्यों से कहा—'वहाँ के लोगों ने क्षात्र-वीर्य देखा है—अब मैं उन्हें ब्रह्माण्ड का तेज दिखाना चाहता हूँ।'

लन्दन में कुछ दिन रुक कर स्वामी जी अमेरिका पहुँचे वहाँ से वे कैलिफोर्निया गये। उस स्थान पर उन्होंने वेदान्त के

नए केन्द्र खोले। भारतीयों के लिए उन्होंने आकलैण्ड लिखा—'मेरे लिये प्रार्थना करो जिससे सदा के लिए मेरे कार्य समाप्त हो जायें और मेरा समूचा मन प्राण जगन्माता में डूब जाय। लड़ाइयाँ हारी और जीती हैं। मैंने अपना बिस्तर बाँध लिया है और अब मैं उस महान मुक्ति-दाता की प्रतीक्षा कर रहा हूँ।....मैं अब भी वही नरेन हूँ, जो दक्षिणेश्वर में पंचवटी के नीचे रामकृष्ण के अद्‌भुत शब्दों को अचरज में डूब कर सुना करता था वही मेरा सच्चा स्वभाव है काम करने का ढंग दूसरों का भला करना आदि सब तो मेरे ऊपर आरोप मात्र है। अब मैं फिर से उनकी वाणी को सुन पा रहा हूँ। वह वाणी मेरे हृदय को फिर से मथ रही है। बन्धन टूट रहे हैं ..प्यार मर रहा है ..कार्य आलोने लग रहे हैं. जीवन का आकर्षण शेष हो गया है. अब तो केवल गुरुदेव की वाणी ही पुकार रही है। 'मुर्दा मुर्दे को गड़ाए, तुम मेरे पीछे जाओ।' और मैं शीघ्र ही उनके पास जाना चाहता हूँ विचरण छोड़ता हूँ.. निर्वाण मेरे सामने है। अब मुझे शान्ति का वह अनन्त सागर दिखाई देने लगा है। जिसमें एक भी लहर नहीं, एक भी झोंका नहीं।'

भारतीयों ने उनकी वाणी सुनी तो जैसे उसी में डूब गए। वे सब समझ गए कि स्वामी जी सदा-सदा के लिए समाधिस्थ हो जाना चाहते हैं।

एक दिन स्वामी जी फांसिस्को के एक आश्रम में बैठे हुए थे। अचानक एक व्यक्ति उनके सामने आकर बैठ गया। स्वामीजी जब अपनी अमृत वाणी से लोगों को पवित्र कर चुके तो उस व्यक्ति ने पूछा—'स्वामी जी ! शून्य क्या है ?

स्वामी जी ने घोर अचरज से उसको अमेरिकन का मुख देखा। समझ गए कि यह व्यक्ति असाधारण बुद्धि वाला है। छोटा सा उत्तर दे बैठे 'शून्य ईश्वर है !'

'लेकिन ईश्वर तो अनन्त हैं ?'

'तो क्या अपनी दृष्टि में शून्य अनंत नहीं है ? अरे भई ! शून्य भी तो अनन्त है । उसका भी सिरा या जोड़ कहीं नहीं है। ऐसा समझो मेरे भाई ! यह जगत ब्रह्म-शून्य से उत्पन्न होता है और उसी में लीन हो जाता है । उसी कारण समय-समय पर प्राण धारण करता है । इस जगत की उत्पत्ति, स्थिति और लय के कारण हम शून्य को ब्रह्म और ब्रह्म को शून्य ही तो कहते हैं । कहते हैं कि नहीं ? शून्य सबका राजा है, सर्वज्ञ है, पहले था, आज है और कल भी रहेगा । वह सबका कारण है । हम सब उसी में से निकलते हैं और उसी में समा जाते हैं । सगुण ब्रह्म (शून्य) इस संसार के शासक हैं । जो लोग शुभ कार्य करते हैं वे उसका कल्याण करते हैं । अशुभ कर्म करने वालों को दण्ड देते हैं । विश्व के सभी प्राणी उन्हीं के शरीर में हैं । उसी की शक्ति से हम चलते, फिरते, फिरते, देखते और काम करते हैं । उन शून्य को न तो आग जला सकती है और वायु उड़ा सकती है ...... !'

स्वामी जी अभी पूरी बात कह भी नहीं पाए थे कि उस व्यक्ति ने अगला प्रश्न खड़ा कर दिया—'इतना तो मैं समझ गया स्वामी जी, कि शून्य ही ईश्वर है । पर उस शून्य के दर्शन हम कैसे कर सकते हैं ?'

'जीवों पर दया करके, ध्यान करके, क्योंकि वह शून्य ब्रह्म स्थूल नहीं है । वह न अणु है और न दीर्घ । उसमें रक्त-मांस, चिकनापन, छाया, अन्धकार आदि कुछ भी नहीं है । वह सबसे अलग है और सबमें समाया हुआ है । उसके अनगिनत नाम हैं । जिसे वाणी कह नहीं सकती, पर जिसकी शक्ति से वाणी बोलती है, उसे ही तुम ब्रह्म-शून्य समझ लो । उसका

प्रकाश सूर्य से भी तेज वाला है। उसी की चमक से सूर्य, चन्द्र, तारे चमकते हैं। अगर उसे जानना चाहते हैं तो विवेक का साफा और वैराग्य के वस्त्र पहन लीजिए—आप जान जायेंगे कि वह क्या है!'

अमेरिका में एक वर्ष तक वेदान्त का प्रकाश फैलाने के बाद स्वामी जी भारत की ओर लौट पड़े। उन्होंने अब एक दिन की भी देर नहीं की। दिसम्बर महीने का पहला जहाज पकड़ा और अकेले ही अपनी मातृभूमि में आ खड़े हुए।

भारत में स्वामी जी ने शिष्यों के बीच कहा—'पहली बार उन्होंने अमेरिका में शक्ति और संगठन को देखा था। पर इस बार वहाँ धन और काम की ओर लिप्सा ने रागद्वेष का जाल फैला रखा है। लोग अधिकार पाने के लिए विकट संघर्ष कर रहे हैं। फिर भी मैंने भौतिक चमक-दमक के पीछे 'सच्ची चमक-दमक' की बातें सुझा दी हैं।'

फिर दो क्षण रुक कर वे कहने लगे–'पश्चिम का सामाजिक जीवन एक कहकहे के समान है। पर उसके पीछे हैं रुदन, एक क्रन्दन! हँसना-हँसना केवल सतही है। वास्तव में तो वह एक तेज पीड़ा से भरा हुआ है यहाँ, हमारे देश में उदासी और खिन्नता ऊपर से दिखाई देती है, पर भीतर निश्चिन्तता है, प्रफुल्लता है, राम है, कृष्ण है, बुद्ध और मुहम्मद है।'

भारतीय तथा विदेशी शिष्यों ने झुक कर कहा—गुरुदेव! पूर्व और पश्चिम को जितना आपने पहचाना है, उतना शायद ही कोई पहचान सके।'

दूसरे दिन स्वामी जी मायावती के अद्वैत आश्रम में पहुँचे। वहाँ उन्होंने श्रीमती सेवियर से भेंट की।

इसके बाद वे अपने मठ में लौट आए। मठ के सन्यासी यह देख कर बड़े दुःखी हुए कि स्वामी जी का स्वास्थ्य टूट

चुका है। अतः वे उन पर पूरा विश्राम करने के लिए जोर डालने लगे। उन्होंने स्वामी जी से कहा—'गुरुदेव! जब तक आप पूरी तरह स्वस्थ न हो जायें, तब तक लोगों से मिलने-जुलने का विचार बिल्कुल छोड़ दें।'

पर भला स्वामी जी को कहाँ चैन था? वे अपने स्वभाव को किसके आँचल में बाँध आते। बराबर वे बड़ी संख्या में आने वाले लोगों से मिलते-जुलते रहे। उनसे निर्देश प्राप्त करते रहे और उन्हें आर्शीवाद देते रहे।

मठ में वे एक मुक्त सन्यासी थे—एक सच्चे विवेकानन्द। वे स्वच्छन्द रूप से नंगे पैर इधर-उधर घूमते या कभी पैरों में चट्टियाँ पहन कर और हाथ में डंडा लेकर टहलने लगते। ऐसा लगता, उल्लास और विनोद से भरा एक सुन्दर बालक है--बड़ी बड़ी आँखों वाला, विशाल मस्तिष्क वाला।

उन्होंने सम्पूर्ण शरीर को ढँकना छोड़ दिया था। कभी कौपीन धारण कर लेते तो कभी बदन पर गेरुआ कपड़ा लपेट लेते—और तब मठ के मौन और निर्जन साम्राज्य में शासन करते हुए घूमते। उनका संसार जैसे उन्हीं तक सीमित रह गया हो। प्रायः वे मठ के बगीचे में पौधों को इधर से उधर लगाते रहते। कभी पाक-शाला में अपने हाथ से भोजन बनाने के लिए घुस जाते, या फिर अपने पालतू पशुओं के साथ खेलते रहते। इन पशुओं में 'बाघा' उनका कुत्ता था, हँसी—उनकी बकरी थी, 'वटरू' उनका मेमना था। 'सागर' हिरन और 'रम्भो' गाय को भी उनका प्यार मिला हुआ था।

लोग इस समय उनको देखते और उँगली उठा कर कहते -'यही हैं विश्व-विख्यात विवेकानन्द!'

एक दिन स्वामी जी एक पौधे को जल से सींच रहे थे।

अचानक उनकी नजर कुछ सन्यासियों पर गई। वे लोग पूजा के लिए मन्दिर में जा रहे थे।

स्वामी जी ने उन सबको बुला कर कहा—'तुम ब्रह्म को खोजने कहाँ जाओगे ? वह तो सभी जीवों में समाया हुआ है। अरे यही है वह ब्रह्म, जहाँ तुम खड़े हो। तुम्हें धिक्कार है जो प्रत्यक्ष ब्रह्म की उपेक्षा कर अपने मन को दूसरी चीजों में लगाते हो। देखो ये पौधे ब्रह्म हैं। ये पक्षी ब्रह्म का अंश हैं। तुम्हारे सामने ब्रह्म ही तो खड़ा है—पकड़ लो उसके पाँव !

उनकी ओजस्वी वाणी सुन कर सभी सन्यासी अमिट शान्ति का अनुभव करने लगे। वे लगभग पन्द्रह मिनट तक उसी स्थान पर खड़े रहे। उन्हें लगा कि साक्षात ब्रह्म के दर्शन ही कर रहे हैं। वे अ नी भूल पर पछताते हुए जिधर से आए थे, उधर ही लौट गए।

उसी सन्ध्या को स्वामी जी ने मठ के सभी छोटे बड़े प्राणियों को एक सुन्दर भोज दिया। फिर बोले—'तुम सब नारायण हो ! आज मैंने सचमुच नारायण की ही सेवा की है। देखो, इस आश्रम में गरीब लोग भी मौजूद हैं। ये अपढ़ लोग कितने सीधे-सादे हैं। तुम इन लोगों के दु:खों का निवारण करो। हे अजर पुत्रो ! तुम अगर आत्मा हो। तुम शरीर वाले हो - जड़ नहीं हो, दास नहीं हो। जड़ तो तुम्हारा दास है। तुम्हारी मुक्ति तभी हो सकती है। जब तुम तैंतीस करोड़ देवताओं में विश्वास छोड़कर अपने में विश्वास करने लगोगे। संसार के इतिहास में उन्हीं लोगों की कहानियाँ हैं जिन्हें अपने आप में विश्वास था। तुम सब कुछ कर सकते हो। मैं भी कभी तुम्हारी तरफ अकेला था। पर मैंने - अच्छा उसे छोड़ो तुम अपने आप में विश्वास करके जीवन को चुनो, मृत्यु को नहीं।

याद रखो, भारत अमर है क्यों कि वह आज भी ईश्वर की खोज में लगा हुआ है। मेरे कहने का मतलब यह नहीं है कि राजनैतिक या सामाजिक उन्नति जरूरी नहीं है, पर वे गौण हैं, धर्म मुख्य है।

'जब हमारे देशवासियों के पास पेट भरने को अनाज नहीं न तन ढँकने को कपड़ा है, तो हम अपने मुख में भोजन का कौर कैसे रख सकते हैं? हमें अपनी विद्वता और शास्त्रों के सारे गर्व को दूर फेंक देना चाहिए। अपनी मुक्ति पाने के लिए गाँव-गाँव जाकर दरिद्रों की सेवा में जुट जाना चाहिए। अपने बल, अपने चरित्र और अपनी एकता से हमें धनी पुरुषों को समझा देना चाहिए कि गरीबों के प्रति उनके क्या कर्त्तव्य हैं? जाने क्यों पैसे वाले इन के बारे में कुछ नहीं सोचते? अरे! ये ही तो राष्ट्र के मेरुदण्ड है। यही भूल है और यही शक्ति हैं। जब तक ये उन्नत नहीं होंगे, भारत माँ कभी नहीं जागेगी।""मैं सूर्य के प्रकाश की तरह यह स्पष्ट देख रहा हूँ, कि जो ब्रह्म, जो शक्ति मुझमें है, वही इनमें भी है। बस, कहने के ढङ्ग में थोड़ा सा अन्तर है। संसार के समूचे इतिहास में क्या कभी तुमनें किसी देश को उठते हुए देखा है। जब तक कि उसके समूचे शरीर में राष्ट्रीय खून का समान रूप से संचार नहीं होता, तब तक वह नहीं उठ सकता। वह शरीर क्या कर सकता है जिसका एक अंग पक्षाघात से पीड़ित हो गया हो।

बड़ी तपस्या के बाद मेंने सबसे ऊँचे सत्य को जाना है और वह यह है कि परमेश्वर हरेक जीव में विद्यमान है। हम सब उसी के रूप हैं। इस तरह वही परमेश्वर की उपासना करता है, जो सब जीवों की सेवा करता है।'

स्वामी जी का यह आखिरी उपदेश था-मठवासियों के लिए।

दिन बीतते जा रहे थे और स्वामी जी की उपस्थिति मात्र से मठ में जीवन दिखाई देता रहता था । चाहे वे डांट रहे हों, चाहे अधीर हों, चाहे वे विनोद में भरे हों—सभी के लिए वे प्रिय 'नरेन' थे ।

एक बार गुरु-भाइयों ने स्वामी को अस्वस्थ देखकर कुछ साधुओं को उनके पास जाने से रोक दिया ।

जब स्वामी जी को पता चला तो वे दुःखी होकर बोले– 'देखो ! रोकना या रुक जाना मृत्यु है, क्या हमारे गुरुदेव ने अन्तिम सांस तक वही उपदेश नहीं दिया ? मुझे भी क्या ऐसा नहीं करना चाहिए ? मैं इस शरीर के जाने की जरा भी चिन्ता नहीं करता । अब मैं सत्य के सच्चे खोजियों को अपने पास आते देखता हूँ, तो मुझे भगवान मिल जाते हैं । अगर अपने भाइयों को जगा देने में मुझे कई बार मृत्यु का वरण करना पड़ा, तो मैं बार-बार उसे स्वीकार करूँगा ।'

कहते-कहते उनका चेहरा स्वप्निल हो उठा—मानो वे दूर खो गये ।

अब स्वामी जी की आयु 39 वर्ष की होने को आ गई थी । मठ के सन्यासियों को याद आया 'परमहंस श्री रामकृष्ण ने भविष्य वाणी की थी कि नरेन अपने कार्य की समाप्ति पर समाधि में मग्न हो जाएगा ।'

तो क्या गुरु जी की वाणी सच होने जा रही है ? एक दिन स्वामीजी ने अपने शिष्यों से कहा—'मैं अपने चालीस वर्ष देखने के लिए जीवित नहीं रहूँगा ।'

इस गम्भीर बात को सुनकर सभी मठ-वासी किसी अनजान पीड़ा में खो गये । उन्हें याद आने लगे वे दिन जब स्वामी जी नें विश्व के दोनों गोलार्द्ध के लोगों को सोते से

जगाया था। भक्तों और शिष्यों को अपनी अमृत-वाणी से कृतार्थ किया ''' संसार के शत-शत लोगों को चुपचाप प्रभावित किया था और कहा था–हो सकता है कि अपने शरीर से बाहर आ जाना और उसे फटे कपड़े की तरह छोड़ देना मेरे लिये श्रेयस्कर हो, पर मैं कार्य करना बन्द न करूँगा। मैं सब जगह लोगों को जगाता रहूँगा, जब तक कि संसार यह न जान ले कि वह ईश्वर से दूर नहीं है।

समय व्यतीत होता जा रहा था। ऐसा लगता था कि स्वामी जी शरीर के भार को दूर फेंकना चाहते हैं।

वह शुक्रवार का दिन था और उन्नीस सौ दो ईस्वी। चार जुलाई को स्वामी जी प्रातःकाल पूजाघर में गए। खिड़कियों और दरवाजों को बन्द कर तीन घण्टे उन्होंने ध्यान में बिताये। इसके बाद माँ भारती को याद कर एक भजन गुनगुनाने लगे। नीचे अन्य सन्यासी उनकी अमर स्वर-लहरी में डूबते चले जा रहे थे।

पूजाघर की सीढ़ियों से नीचे उतरने के बाद स्वामी जी मठ के आँगन में टहलने लगे। उनका मन अन्तर्मुखी था। वे जैसे अपने आप से कहने लगे-'यदि कोई दूसरा नरेन होता तो समझ पाता कि विवेकानन्द ने क्या किया है ? फिर भी भारत माँ की आँचल का दूध जाने कितने विवेकानन्द पियेंगे। आखिर मैं चिन्ता क्यों करूँ ?'

एक गुरु भाई ने स्वामीजी के ये शब्द सुने तो वह घबरा गया। क्योंकि स्वामी जी ने कभी ऐसी बात नहीं कही थी।

दोपहर को अंशुमाली ने अपनी सुनहरी किरणें आँगन में बिखेरी तो स्वामी जी सबके साथ भोजन करने चले गये।

सन्ध्या के समय घर-घर दिया बत्ती जली तो स्वामीजी पूजा घर में पधारे। उन्होंने जय-माला अपने हाथ में ली। एक शिष्य से कहा—'घण्टा बजाओ.....।'

शिष्य ने पूजा घर को घण्टे से निनादित किया, तो स्वामी जी तख्त पर लेट गए। एक घण्टा बाद उन्होंने बड़ी गहरी साँस ली और करवट बदल ली। दो क्षण बाद एक दीर्घ निःश्वास की आवाज पूजा-घर में टकराई और फिर सब कुछ शान्त और निःस्तब्ध हो गया—थका शिशु माँ की गोद में सो गया। अब वहाँ से इस—माया संसार में फिर से जागने की कोई बात नहीं थी।

मठ में आँसुओं की आँधी उमड़ आई। लेकिन सब जानते थे कि नरेन अमर हो चुका है—विवेकानन्द अमर हो गए हैं।

एक ब्रह्मचारी शिष्य के मुख से निकला—'प्रत्येक जीव एक-एक तारा है और ये तारे शाश्वत आकाश की नीली चादर में जुड़े हुए हैं स्वामी जी इन तारों में 'सर्वाधिक चमकीले' तारे के रूप में जगमगा रहे हैं..। जगमगाते रहेंगे!'

उन्हें शत-शत प्रणाम कोटिशः नमन

— बस —

भारत माता के जिस महान् सपूत नें इसकी 'कीर्ति-पताका' को देश में ही नहीं, बल्कि विदेशों में भी 'फरर-फरर' फहराया था—उसकी सरस जीवन-गाथा ! अत्यन्त प्रेरक और रोचक !!